मलिक मुहम्मद जायसी कृत

कहरानामा
मसलानामा

अमरबहादुर सिंह अमरेश

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

मलिक मुहम्मद जायसी कृत

कहरानामा और मसलानामा

मलिक मुहम्मद जायसी कृत

कहरानामा और मसलानामा

•

श्री अमरबहादुर सिंह 'अमरेश'

•

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

प्रकाशक :
हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

●

प्रथम संस्करण—२०००, दिसम्बर १९६२
मूल्य : २ रुपये ५० न०पै०

●

मुद्रक :
पी. सी. मेहरा,
न्यू एरा प्रेस,
८, नवाब यूसुफ रोड, इलाहाबाद

प्रकाशकीय

'कहरानामा और मसलानामा' मलिक मुहम्मद जायसी की लुप्त-प्राय कृतियाँ मानी जाती रही हैं। इन दोनों कृतियों के उद्धारक और सम्पादक श्री अमरबहादुर सिंह 'अमरेश' ने सन् १६५६ में जब 'मसलानामा' की पांडुलिपि एक संक्षिप्त भूमिका सहित एकेडेमी कार्यालय में भेजी तो समस्या थी कि इसको प्रामाणिक कैसे माना जाय। विद्वानों का ध्यान इस विषय पर आकर्षित करने के हेतु 'मसलानामा' को एकेडेमी की शोध-पत्रिका 'हिन्दुस्तानी' में प्रकाशित किया गया। इससे वांछित फल मिला और बाद में निर्णय हुआ कि पाठ-संशोधन के साथ दोनों कृतियों को एकेडेमी प्रकाशित करे।

श्री अमरबहादुर सिंह 'अमरेश' ने विद्वत्समाज तथा जायसी के अध्येताओं के सम्मुख जायसी की कही जाने वाली ये दोनों कृतियाँ विस्तृत भूमिका के साथ उपस्थित की हैं। जैसा अमरेश जी ने भूमिका में कहा है, उन्होंने इन दोनों कृतियों को प्रकाश में लाने के लिए भगीरथ प्रयत्न किया है। हम यही आशा प्रकट कर सकते हैं कि विद्वत्समाज उनके प्रयास की सफलता स्वीकार करेगा। जायसी के गाँव 'जायस' के निकट के निवासी होने के कारण उन्हें इस खोज के काम में कुछ सुविधा भी रही है। हमारा ख्याल है कि ठीक इसी कारण वे जायसी की अवधी की सहज प्रकृति को पहचान कर यथासम्भव शुद्ध पाठ भी प्रस्तुत कर सके हैं।

हमारा विश्वास है कि विद्वान् और सुधी पाठक इस सम्पादित ग्रन्थ को जायसी के अध्ययन का एक उपयोगी अङ्ग मानेंगे।

अक्टूबर, १६६२
हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

विद्या भास्कर
मन्त्री तथा कोषाध्यक्ष

समर्पण

आदरणीय श्री भगवतीशरण सिंह जी

को

महाकवि जायसी की

कहरानामा और

मसलानामा

सादर-भेंट

—'अमरेश'

वक्तव्य

महाकवि जायसी के ग्रन्थों की प्राप्त पांडुलिपियों में पाठ-भेद होना स्वाभाविक है। इसका मूल कारण यह है कि प्रतियों का प्रतिलिपि-सम्बन्ध ज्यों-ज्यों बढ़ता गया त्यों-त्यों पाठान्तर भी होता गया। एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद होने पर तो यह अन्तर और बढ़ गया। जब फ़ारसी एवं बँगला से पुनः हिन्दी रूपान्तर किया गया तो अनेक शब्दों का रूप विकृत हो गया। इनमें वे शब्द अधिक हैं, जिन्हें ग्रामीण अंचल से लिया गया है, विशेषकर क्षेत्रीय-बोली के शब्द। अवध-क्षेत्र में जो अवधी बोली जाती है, उसमें भी स्थान-स्थान पर भिन्नता है। एक ही शब्द विभिन्न जिलों में, विभिन्न रूपों में बोला जाता है। स्वयं रायबरेली जिले में ही पूर्वी एवं पश्चिमी क्षेत्रों में शब्दान्तर हो गया है। प्रतापगढ़ एवं सुलतानपुर में और अन्तर है। उदाहरणार्थ, रायबरेली के पश्चिमांचल (वैसवारे) में—'कहाँ जाते हो ?' को 'कहाँ जइहौ ?' बोला जाता है किन्तु पूर्वांचल में, वैसवारे की ही सीमा पर 'कहाँ जइहौ' को 'कहाँ जात हौ' अथवा 'कहाँ जातथौ' कर दिया गया है। थोड़ा और आगे बढ़ने पर, प्रतापगढ़ जिले में यही शब्द 'कहाँ जाता अहा' बोला जाता है। इसी प्रकार 'खाता हूँ' को—'खाय रहेन है' > 'खाइत है' > 'खाइ थी' > 'खाइत अहै' चार विभिन्न रूपों में एक ही जनपद में बोला जाता है।

जायस के आस-पास पूर्वी अवधी एवं वैसवारी बोली, बोली जाती है। जायसी के ग्रन्थों में इसी क्षेत्रीय बोली के शब्दों की भरमार है, अतः इन शब्दों से अनभिज्ञ होने के कारण ही प्रतिलिपिकारों ने पद्मावत एवं जायसी के अन्य ग्रन्थों का रूप विकृत कर दिया है। यही दशा सम्पादकों की भी रही है। ऐसी स्थिति में—'वीछुरा' का 'बेहरा',

'लहरी' का 'लहरैं', 'चरित का' 'चरत', 'सोती' का 'सूती', 'कोडवारी' का 'खुटकारी', 'डोंगा' का 'झोंका', 'खौरि' का 'घोर', 'पेलन' का 'पलना', 'गोड़िया' का 'कौड़िया' तथा 'छपावै' का 'छनावै' हो जाना कोई अस्वाभाविक नहीं है।

मुझे जो द्वितीय पांडुलिपि प्राप्त हुई है, उसे मैं अब तक की प्राप्त पांडुलिपियों में सबसे अधिक शुद्ध इसलिए मानता हूँ कि यह एक क्षेत्रीय व्यक्ति की लिखी हुई है। उसे इस क्षेत्र के 'शब्दों' की अधिक जानकारी थी। श्री रामबख्श साहेब स्वयं एक अच्छे कवि थे। अतः स्वाभाविक था कि उनके द्वारा लिखाई गई जायसी के ग्रन्थों की पांडुलिपि अधिक शुद्ध होती। इस पांडुलिपि की सबसे अधिक विशेषता यह है कि इसमें क्षेत्रीय बोली के शब्दों का रूप विकृत नहीं होने पाया है, वे ज्यों-के-त्यों हैं। अतः पाठ का शुद्धीकरण करने में बहुत सरलता हो गई है।

आदरणीय डॉ० माताप्रसाद जी गुप्त के सामान्य पाठों में जो पाठान्तर दिखाया गया है, उसका आधार यही पांडुलिपि है। यों, इसे भी हम शत-प्रतिशत शुद्ध नहीं कह सकते, क्योंकि जब तक जायसी की हस्तलिखित प्रति स्वयं न मिल जाय तब तक पाठ की शुद्धता का दावा नहीं किया जा सकता। फिर भी, विद्वानों को इस पांडुलिपि पर विचार करना है। इसे उपेक्षित कर देना, जायसी-साहित्य के प्रति बहुत बड़ा अन्याय होगा। मैंने जो प्रकाशित प्रतियों में पाठान्तर प्रस्तुत किया है, उसमें मेरा दृष्टिकोण जायसी के ग्रन्थों का शुद्धीकरण करना मात्र है, जायसी-साहित्य के विद्वानों की मान्यताओं को चोट पहुँचाना नहीं। आशा है, इसी दृष्टिकोण से मेरी भावनाओं को दृष्टिगत करके इस पर विचार किया जायगा।

प्रस्तुत-संकलन में जायसी के दो-नवीन ग्रन्थ 'मसलानामा' एवं 'कहरानामा' संकलित हैं। यह दोनों ग्रन्थ मुझे इन्हीं दोनों पांडुलिपियों में प्राप्त हुए हैं। प्रथम पांडुलिपि मुझे उत्तर प्रदेश सरकार के श्रम व

सामुदायिक-विकास उप-मन्त्री, एवं जायस-क्षेत्र के विधायक, सै० वसी-नकवी साहब से प्राप्त हुई है। यह उनकी माता जी के पास सुरक्षित थी जो परिवार में परम्परागत चली आने वाली 'थाती' के रूप में थी। माताजी के देहावसान के पश्चात् यह प्रति श्री नकवी साहब के हाथ लगी और उनकी कृपा से यह मुझे प्राप्त हुई। अतः माननीय नकवी साहब का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने मुझे उक्त पांडुलिपि के अध्ययन एवं सम्पादन का अवसर दिया।

द्वितीय पांडुलिपि सत्तनामी सम्प्रदाय के पं० त्रिभुवन प्रसाद त्रिपाठी से मुझे प्राप्त हुई। श्री त्रिपाठी जी अब रिटायर्ड प्रधान-अध्यापक हैं और वह जायस के ही निकट 'तिलोई' में रहते हैं। यह पांडुलिपि भी सत्तनामी सम्प्रदाय में चली आने वाली परम्परागत सम्पत्ति के रूप में थी। महात्मा जगजीवन साहब (कोटवा) के शिष्य महात्मा 'दूलनदास' के पुत्र श्री रामबख्सदास की प्रेरणा से यह लिखी गई थी। इसे श्री मनदास ने सं० १८६६ वि० में लिखा था। तब से आज तक यह सत्तनामी महात्माओं के पास घूमती रही। बाद में यह प्रति पं० त्रिभुवन प्रसाद जी त्रिपाठी के गुरु महात्मा-चन्द्रभूषण जी के हाथ लगी। यह उनके पास भी काफी समय तक रही। तत्पश्चात् गुरु जी की कृपा से पं० त्रिभुवन प्रसाद जी को प्राप्त हो गई। मैं पं० त्रिभुवन प्रसाद जी के प्रति भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने उक्त पांडुलिपि मुझे अध्ययन एवं सम्पादन के लिए प्रदान की। १५० वर्ष पुरानी इस पांडुलिपि में क्षेत्रीय बोली का शब्द ज्यों का त्यों हैं। उनका रूप विकृत नहीं हुआ, यही इसकी प्रामाणिकता का सबसे बड़ा प्रमाण है। यद्यपि प्रथम पांडुलिपि में कुछ थोड़े से शब्दों का रूप बदल गया है।

इस संग्रह में कुछ नवीन तथ्य भी, जायसी के नये ग्रन्थों के साथ प्रकाश में आये हैं। विशेषकर जायसी की 'गुरु-परम्परा' का स्थल सर्वथा नवीन है। विद्वानों को इस पर विचार करना चाहिए। मेरे दृष्टिकोण

से, जायसी के गुरु के विषय में किसी प्रकार की कोई शंका नहीं रह गई है। जहाँ तक सम्भव हो सका है, मैंने अधिक-से-अधिक प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। मुझे अपने प्रमाणों पर विश्वास है। इनके आधार पर मैं एक निश्चित तथ्य पर पहुँच चुका हूँ। फिर भी, यदि किसी को इस पर सन्देह है, तो मेरा विनम्र निवेदन है कि इस सन्देह के लिए भी मेरी खोज ने द्वार खोल दिया है। इस कार्य को और अधिक गतिशील किया जा सकता है।

भूमिका में जायसी-गुरुपरम्परा का जो 'वंश-वृक्ष' दिया गया है, उसमें सूफी सन्तों के जन्म-मृत्यु की तिथियाँ भी हैं। यह मुझे 'कवायफे अहमदिया' नामक हस्तलिखित फारसी पुस्तक से प्राप्त हुई हैं। यह पुस्तक 'सैय्यद अशरफ जहाँगीर' की 'शिष्य परम्परा' में चली आने वाली सूफी सन्तों की परिचयात्मक पुस्तिका है, जो अब उन्हीं की गद्दी पर आसीन एवं जायस के सूफी सन्त, कयूम अशरफ साहब के पास सुरक्षित है। सै० कयूम अशरफ साहब से इस ग्रन्थ के निर्माण में मुझे अत्यधिक सहयोग मिला है। उन्होंने बड़ी ही आत्मीयता से मेरी शंकाओं का समाधान किया है, अतः उनके प्रति भी मैं अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

'मसलानामा' के प्राप्ति की सूचना पाते ही डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल जी ने पत्र लिखकर मेरे कार्य की जो सराहना की है और मेरा उत्साह बढ़ाया है, इसके लिए मैं डा० साहब का कृतज्ञ रहूँगा क्योंकि सर्व-प्रथम 'मसलानामा' को उन्होंने ही मान्यता प्रदान की है। डा० परमेश्वरी-लाल गुप्त ने भी 'हिन्दुस्तानी' पत्रिका में 'मसलानामा' प्रकाशित होते ही मुझे बधाई का पत्र भेजा, अतः उनका भी आभारी हूँ। जिन मित्रों तथा साथियों ने इस सम्बन्ध में मुझे पत्र लिखे हैं, उनका भी कृतज्ञ हूँ।

आदरणीय डॉ० माताप्रसाद जी गुप्त का मैं किन शब्दों में आभार प्रदर्शन करूँ, क्योंकि उन्हीं की 'शंकाओं' से ही मेरा कार्य गतिशील हुआ है। यदि डॉ० गुप्त जी ने अपनी 'शंकायें' व्यक्त न की होतीं तो मुझे

न इतनी प्रेरणा प्राप्त होती और न उत्साह-वर्द्धन ही होता। नये तथ्यों के अनुसन्धान की ओर उन्मुख करने का सम्पूर्ण श्रेय डा० गुप्त जी को ही है। यह उन्हीं की परोक्ष-प्रेरणा का फल है। इस अवसर पर मैं भूत पूर्व सूचना संचालक श्री भगवती शरण सिंह जी एवं सहायक संचालक, तथा 'ग्राम्या' के भू० पू० सम्पादक श्री ठाकुर प्रसाद सिंह जी को भी नहीं भूल सकता जिनसे पर्याप्त सहायता ही नहीं मिली, 'ग्राम्या' द्वारा मेरे पक्ष का प्रबल समर्थन भी किया गया।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी के मन्त्री श्री विद्याभास्कर जी एवं सहायक मन्त्री सत्यव्रत सिन्हा का भी कृतज्ञ हूँ जिनकी कृपा से जायसी के दो नवीन ग्रन्थों का प्रकाशन एकेडेमी द्वारा सम्भव हो सका है।

मुझे विश्वास है, महाकवि जायसी के 'जीवन-वृत्त' पर जो नये तथ्य मैंने दिये हैं, उनसे तत्सम्बन्धी शोध-कार्य में सहायता मिलेगी और 'कहरानामा' तथा 'मसलानामा' को जायसी साहित्य के प्रेमी, पाठक एवं विद्वान् अपना कर मेरे परिश्रम को सार्थक करेंगे।

वसंत-पंचमी सं० २०१८
गाँधी नगर, राय बरेली,
उत्तर प्रदेश

—'अमरेश'

——

विषय-सूची

——

भूमिका

पद्मावत के प्रणेता एवं सोलहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध सूफी संत-कवि मलिक मुहम्मद जायसी की कुछ कृतियाँ तो प्रकाश में आ चुकी हैं किन्तु अनेक रचनाएँ यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं। अभी तक न तो उनकी खोज हो सकी है और न वे प्रकाश में ही आ सकी हैं। यही नहीं, आज तक यह भी निश्चित नहीं हो सका कि जायसी ने कितने ग्रन्थ लिखे थे, उनके ग्रन्थों के नाम क्या हैं ? जो नाम बताये जाते हैं वह प्रामाणिक हैं अथवा नहीं ? ऐसी स्थिति में, जहाँ महाकवि का अधिकांश साहित्य अंधकार में पड़ा हो, कुछ नयी उपलब्धियाँ अकस्मात् ही सबको चकाचौंध कर देती हैं। अब से कुछ समय पूर्व, इस अमूल्य सामग्री को एकत्रित करने के लिये मैंने जो उद्योग किया था, 'मसलानामा' तथा 'कहरानामा' उसी का प्रतिफल है। यह दोनों ग्रन्थ 'जायसी-साहित्य' की नवीन उपलब्धियाँ हैं जिनसे महाकवि के लुप्तप्राय ग्रन्थों की संख्या में तो कमी हुई ही है, जायसी के 'जीवन-दर्शन' को समझने में भी सहायता मिली है।

नवीन उपलब्धियाँ

'मसलानामा' की प्रथम पांडुलिपि मुझे जायसी-क्षेत्र के विधायक एवं भूतपूर्व श्रम व सामुदायिक विकास उपमंत्री श्री वसी-नकवी साहब के पास नवम्बर १९५९ में प्राप्त हुई। यह पांडुलिपि ७½"×१२½" साइज के २४८ पृष्ठों की है। इसमें 'पदुमावती', 'अखरावती', 'कहरानामा' तथा 'मसलानामा' अंकित हैं। पांडुलिपि पूर्ण है तथा लिपि देवनागरी है। कहीं-कहीं 'कैथी' के भी अक्षर आ गये हैं। कागज बहुत पुराना नहीं प्रतीत होता। स्याही काली चमकदार है। लिपिकार ने प्रारम्भ अथवा अंत में, कहीं भी अपनी सूचना नहीं दी, न किसी के हस्ताक्षर ही कहीं हैं। काट-

प्रथम पांडुलिपि

पीट नहीं है। अक्षर सुडौल एवं सुन्दर हैं। हाशिये में कहीं भी किसी प्रकार का सुधार अथवा संशोधन नहीं किया गया है। हस्तलिपि, सम्पूर्ण पांडुलिपि में एक-सी है। प्रत्येक पृष्ठ पर, जहाँ पृष्ठ-संख्या पड़ी है उसी के ऊपर 'राम' शब्द अंकित है। यथा—राम/१०० या राम/१०७। प्रारम्भ में, जहाँ से पुस्तक शुरू की गई है, वहाँ पांडुलिपिकर्त्ता के विषय में कुछ संकेत मिलते हैं जिनसे यह पता लगता है कि वह 'जगजीवन' साहब कोटवा का भक्त एवं 'सत्तनामी' सम्प्रदाय का अनुयायी है। पद्मावत प्रारम्भ करने के पूर्व पांडुलिपिकर्त्ता ने लिखा है—"श्री गणेशाय नमः लिष्यते पोथी पदुमावति काव्य मलिक मोहमद की मता निगु'न भक्ति का। राम श्री जगजीवन साहेब"। इससे यह तो निश्चित ही हो जाता है कि पांडुलिपिकर्त्ता सत्तनामी सम्प्रदाय का है। साथ ही साथ यह भी संदेह उत्पन्न होता है कि क्या यह जगजीवन साहब की लिखी हुई है? किन्तु ऐसी बात नहीं है। हो सकता है जगजीवन साहब ने भी जायसी के ग्रन्थों की पांडुलिपि लिखी हो किन्तु इसमें संदेह है कि यह वही पांडुलिपि है क्योंकि इसका कागज एवं लिपि बहुत प्राचीन नहीं प्रतीत होती। हाँ, उस पांडुलिपि की यह प्रतिलिपि हो सकती है। सम्पूर्ण पांडुलिपि में, प्रत्येक ग्रन्थ की पृष्ठ-संख्या अलग-अलग हो, ऐसी बात नहीं है। 'पद्मावती' की पृष्ठ संख्या १ से १०७ तक है। शेष 'अखरावती', 'कहरानामा' एवं 'मसलानामा' १ से १६ तक अर्थात् ३२ पृष्ठों में हैं।

इस पांडुलिपि में 'कहरानामा' पृष्ठ १० से प्रारम्भ होता है तथा पृष्ठ १५ के पश्चात् 'मसलानामा।' 'कहरानामा' के प्रारम्भ में शब्द हैं—"अथ लिष्यते कहराना मलिक मुहंमद जी का" और अंत में है—"इति श्रा कहरानामा मलिक मुहंमद को समाप्त।" प्रारम्भ में केवल 'कहराना' शब्द है, अंत में 'कहरानामा'। लगता है प्रारम्भ में कहराना के पश्चात् "मा" शब्द लिखने से रह गया है। इसी प्रकार 'मसलानामा' के प्रारम्भ में है—"श्री गणेशाय नमः अथ लिख्यते मसलानामा मलिक मुहंमद क" और अंत में है—"इती श्री मसलानामा मलिक मुहंमद क समाप्त।"

मसलानाया के अंत में दो पृष्ठों में "कैथी लिपि" में उसी कागज एवं उसी स्याही से कुछ लिखा हुआ है। हाँ, कलम अवश्य दूसरी है। हस्तलिपि भी घसीट में है जो अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी। पुस्तक में कपड़े की सुन्दर लाल जिल्द बँधी है जो नयी है। लगता है, पांडु-लिपि के स्वामी ने इसे सुरक्षित रखने के लिये सजिल्द करवा लिया है। यद्यपि श्री नकवी साहब इससे इनकार करते हैं।

द्वितीय पांडुलिपि

जायसी के ग्रन्थों की द्वितीय पांडुलिपि मुझे सेमरौता जू० हा० स्कूल के प्रधानाध्यापक—अब तिलोई निवासी—श्री त्रिभुवन प्रसाद त्रिपाठी के पास प्राप्त हुई। इस पांडुलिपि में भी प्रथम पांडुलिपि की भाँति—'पदुमावती,' 'अखरावती,' 'कहरानामा' एवं 'मसलानामा' संग्रहीत हैं। हाँ, इनका क्रम अवश्य बदल गया है। कहरानामा मध्य में आ गया है और 'अखरावती' अंत में। पांडुलिपि के अनुसार ग्रन्थों का क्रम इस प्रकार है—पदुमावती, कहरानामा, मसलानामा एवं अखरावती। सम्पूर्ण पुस्तक में ५½"×८½" के ३३० पृष्ठ हैं। लिपि कैथी मिश्रित हिन्दी है। जिन्हें कैथी लिपि का अच्छा ज्ञान न हो, उन्हें इसे पढ़ने में कठिनाई पड़ेगी। अक्षर बहुत ही सुन्दर एवं स्याही काली चमकदार है। लाल स्याही का भी प्रयोग पृष्ठों को आकर्षक बनाने के लिये किया गया है। जहाँ 'दोहा' समाप्त होता है, वहाँ दोनों ओर लाल स्याही की तीन-तीन खडी-पाइयाँ हैं। 'दोहा' शब्द के दोनों ओर भी ऐसा ही है। दोहों की संख्या पड़ी है। प्रारम्भ के १० पृष्ठों पर, ऊपर हाशिये में कहीं "ꠞ।मꠞ।म" (राम-राम) शब्द लिखा है कहीं, "सत्तिनाम, सत्तिनाम" कहीं-कहीं दोनों। १०वें पृष्ठ के पश्चात् फिर ऐसा नहीं है। प्रारम्भ का केवल एक पृष्ठ और अंत के दो पृष्ठ पांडुलिपि में नहीं हैं। इस पांडुलिपि में सबसे विशेष बात यह है कि पद्मावत खंडों में विभाजित है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपनी 'जायसी ग्रन्थावली' में पद्मावत का विभाजन

किया है। आचार्य शुक्ल जी के पद्मावत में 'स्तुति-खंड' से लेकर 'उपसंहार' तक ५८ खंड हैं किन्तु इसमें केवल ३० हैं।

पांडुलिपि का प्रथम-पृष्ठ न होने से प्रारम्भिक शब्द नहीं मिलते। हाँ, पद्मावती के अंत में—"इती श्री पदुमावती कथा संपूर्न सुभ मस्तु ॥ सुभ ॥॥। इसके पश्चात् नीचे बाईं ओर लिखा है—॥ ली: मनदास:: इससे स्पष्ट है कि इस पांडुलिपि के लेखक श्री मनदास जी हैं।

श्री मनदास जी कौन थे, कहाँ के रहने वाले थे, इस सम्बन्ध में बहुत कम ज्ञात हो सका है। किन्तु उन्होंने किस प्रकार जायसी की पांडुलिपि प्राप्त करके उसकी प्रतिलिपि की, यह कहानी बहुत रोचक है। सत्तनामी-सम्प्रदाय के आदि गुरु जगजीवन साहेब (कोटवा) के चार शिष्य थे—गोसाइंदास, दूलनदास, खेमदास तथा देवीदास। ये ही चार "शिष्य गद्दियाँ" सत्तनामी-सम्प्रदाय के "चार-पावे" कहे जाते हैं। महात्मा दूलनदास ने ६० वर्ष की आयु में दूसरा विवाह किया। जिससे "रामबख्स" नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। श्री रामबख्श जी अच्छे कवि एवं जायसी के ग्रन्थों के संकलनकर्त्ता हैं। इन्होंने जायसी के ग्रन्थों की प्रतिलिपि की। उसी पांडुलिपि की यह प्रतिलिपि है जिसे श्री मनदास जी ने लिखी है। इसका प्रमाण लेखक मनदास जी ने स्वयं 'पदुमावती' के अन्त में पांडुलिपि लिखने का कारण बताते हुए लिखा है।

सत्य गुरु समरत्थ साहेब, राम बकस प्रमान हैं।
तिन लिखायो ग्रन्थ यह पदुमावती परमान है।

× × ×

साहेब राम बकस कहि दीन्हा
लिखि पदुमावत पूरन कीन्हा

उक्त दोनों उद्धरणों से मेरे कथन की पुष्टि हो जाती है। इस पांडुलिपि के लेखक श्री मनदास सत्तनामी-सम्प्रदाय के थे। उन्होंने अपने गुरु

रामबख्श साहेब के आदेश से इसकी प्रतिलिपि की थी। यह पांडुलिपि सं० १८६६ की है जिसकी सूचना लेखक श्री मनदास के उन्हीं दो पृष्ठों वाले आत्म-निवेदन में मिलती है—

संवत अठारह सौ ओनहत्तरि
लिखा पदुमावति कथा।

इससे यह प्रतीत होता है कि श्री मनदास की यह पांडुलिपि आज-१६० वर्षों से सत्तनामी-संतों के साथ घूमती रही। लगभग सौ वर्ष बाद यह महात्मा चन्द्रभूषणदास को प्राप्त हुई। वर्तमान पं० त्रिभुवन प्रसाद जी त्रिपाठी इन्हीं महात्मा चन्द्रभूषणदास जी के शिष्य हैं और यह पांडु-लिपि अब उनके पास सुरक्षित है। अतः यह पांडुलिपि मुझे अन्य पांडु-लिपियों की अपेक्षा अधिक प्राचीन एवं प्रामाणिक प्रतीत हुई। पांडुलिपि का कागज, स्याही एवं जिल्द सभी कुछ पुरानी हैं। हाशिये पर संशोधन आदि भी नहीं है। यह पांडुलिपि किन्हीं रामगुलाम की पांडुलिपि की प्रतिलिपि है। इसका प्रमाण भी इसी 'आत्म-निवेदन' में मिलता है—

पदुमावति यह पोथी, लिख संपूरन कीन्ह।
दसखत रामगुलाम के, देखा सो लिखि दीन्ह।

उक्त पांडुलिपि में भी मलिक मुहम्मद जायसी के दोनों नये ग्रन्थ 'कहरानामा' तथा 'मसलानामा' प्राप्त हुए। 'कहरानामा' पदुमावती के अन्त में पृष्ठ १३९ पर अंकित है। प्रारम्भ में—"श्री गणेशाय नमा। लीः कहरानामा मलिक महंमद जी का।।" है। अन्त में पृष्ठ १४८ पर जहाँ 'कहरानामा' समाप्त होता है—"इती श्री कह[illegible]नामा सम्पू[illegible]न सुभ मस्तु।। सत्तनाम।। लिखा मनदास सुभ" लिखा है। इसी प्रकार पृष्ठ—१४८ पर ही जहाँ 'मसलानामा' प्रारम्भ होता है वहाँ—"श्री गणेशायनमः लीः मसला-नामा मलिक महंमद काः" और अन्त में—"इती श्री मसलानामा सम्पूरन सुभ मस्तु" लाल स्याही से अंकित है। यहाँ पर यह ध्यान देने की बात है कि 'मसलानामा' के प्रारम्भ में केवल 'मसलानाम' शब्द है "नामा" नहीं और अन्त में 'मसलानामा' है। लगता है 'अ' की मात्रा छूट गई है।

इस प्रकार इन दोनों पांडुलिपियों से जायसी के दो नये ग्रन्थ 'कहरानामा' एवं 'मसलानामा' की उपलब्धि हुई।

तृतीय पांडुलिपि

पद्मावत की तृतीय पांडुलिपि मुझे मार्च १९६१ में, शाहजहाँपुर जिले के पुवायाँ कस्बे में श्री बद्रीविशाल गुप्त के पास देखने को मिली। यह १२"×८" के कई सौ पृष्ठों की है। प्रत्येक पृष्ठ उखड़ा हुआ है। क्रम भी भंग है और अधिकांश पन्ने एक-दूसरे से अलग हो गये हैं। अतः पृष्ठों की संख्या निश्चित रूप से नहीं बताई जा सकती। हाँ, यह पांडुलिपि अन्य पांडुलिपियों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण एवं बहुमूल्य है। क्योंकि इसमें पद्मावत की कथा के आधार पर प्रत्येक पृष्ठ पर 'काँगडा-शैली' के चित्र बने हैं। चित्र बहुत ही भावपूर्ण हैं। श्री गुप्त जी ने बताया कि यह प्रति, जीर्ण-शीर्ण दशा में उन्हें नेपाल के किसी यात्री से प्राप्त हुई है। बहुत छान-बीन करने पर भी पांडुलिपिकर्त्ता के नाम का पता नहीं लग सका। इसमें केवल पद्मावत है, अन्य ग्रन्थ नहीं। मैंने जब अपनी पांडुलिपियों से उसका मिलान किया तो मुझे वह प्रति यथेष्ट रूप से प्रामाणिक लगी। प्रति लगभग दो-सौ वर्ष पुरानी प्रतीत होती है।

जायसी के जीवन-वृत्त के कुछ नये तथ्य

जायसी के जीवन-वृत्त के विषय में कुछ साहित्यकारों का मत है कि—"वह उतना अंधकार में नहीं है जितना उनके समकालीन अन्य कवियों का[1]" पर यह बात ठीक नहीं प्रतीत होती। मेरा अपना विश्वास है कि यदि सबसे अधिक किसी का जीवन-वृत्त अंधकारपूर्ण है तो वह जायसी का ही है। उनकी जन्म-तिथि, विवाह, संतान, ग्रन्थ, मृत्यु, गुरु-परम्परा आदि जीवन के प्रायः सभी पक्षों पर मतभेद है। यहाँ तक कि जन्म-स्थान के विषय में कुछ लोगों ने मतभेद पैदा

[1] जायसी ग्रंथावली—डॉ० मनमोहन गौतम, पृष्ठ १८

कर दिया है। "भा अवतार मोर नव सदी" यदि जायसी न लिखे होते तो सम्भवतः अन्य प्रकार के विवादों की भी सृष्टि हो जाती। इसका मूल कारण है पद्मावत की शुद्ध एवं प्रामाणिक प्रति का न मिलना। अशुद्ध पाठ से भी बहुत कुछ भ्रम पैदा हो गया है। "जायस नगर धरम अस्थानू, "तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू" अथवा "सन् नौ सै सत्ताइस" आदि इसके ज्वलंत प्रमाण हैं। "तहाँ अवनि" को "तहाँ आइ" और "सैंतालिस" को "सत्ताइस" पढ़ने वालों ने एक विवाद खड़ा कर दिया है। इस विवाद का शुद्धीकरण करने के लिये अभी तक किसी के पास प्रामाणिक तथ्य उपलब्ध नहीं हैं। यही कारण है कि न तो पद्मावत का शुद्ध पाठ ही प्रस्तुत हो सका और न भ्रम-निवारण ही हो पाया। इस सम्बन्ध में मैंने कुछ महत्त्वपूर्ण निम्नांकित तथ्य संग्रहीत किये हैं।

नाम

मलिक मुहम्मद जायसी का वास्तविक नाम 'मुहम्मद' है। 'मलिक' शब्द उपाधि है। 'जायसी' उनके निवास-स्थान का नाम है। जायस में 'मलिक' परिवार एक प्रतिष्ठित परिवार माना जाता था। इस परिवार में अनेकों घर थे। इस समय केवल एक परिवार ही बाकी बचा है, जिसके सदस्य अपने नाम के सामने 'मलिक' उपाधि अब भी लगाते हैं। मलिक मुहम्मद जायसी इसी मलिक उपाधिधारी परिवारों में से किसी परिवार में थे। जायस निवासियों का कथन है कि उन्हें यह उपाधि खिलजी वंश के सुलतानों से प्राप्त हुई थी।

जन्म स्थान

जायस कस्बे के उत्तर-पूर्व की ओर का भाग 'कंचाना' कहलाता है। यह एक मुहल्ला है। इसी 'कंचाने मुहल्ले' में 'मलिक-परिवार' स्थित थे। आज भी जो परिवार शेष है, वह इसी मुहल्ले में रहता है। जायसी का जन्म यहीं हुआ था। पद्मावत की यह अशुद्ध चौपाई "तहाँ आइ......" बहुत भ्रामक सिद्ध हुई है। वास्तव में उसका शुद्ध पाठ यह है :—

जायस नगर आदि अस्थानू ।
तहाँ अवनि कवि कीन्ह बखानू ।।[1]

मैं यहाँ पर एक बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि जायस कस्बा कोई धर्म-स्थान नहीं था । जायसी के पूर्व उसे कोई जानता भी नहीं था । यदि सैयद अशरफ साहब जैसे सन्त के कारण कोई उसे 'धर्म-स्थान' कहे तो उसे भ्रम है । जायसी के वंद्य एवं धर्मगुरु सैयद अशरफ जहाँगीर जायस में नहीं, कछौंछा में रहते थे । यह स्थान तहसील टाँड़ा जिला फैजाबाद में है । अतः सूफीसंतों के कारण भी जायस 'धर्म-स्थान' नहीं कहा जा सकता । यह आदि स्थान अवश्य है । बहुत ही प्राचीन नगर है । 'उद्यान' या 'उजालक नगर' इसका पुराना नाम है । भार-शिवों के राजा उजालक अथवा 'उद्यान' यहाँ शासक थे । यह समय १५० ई० से ३०० ई० तक का है । यही कारण है कि जायसी ने 'जायस' को 'आदि अस्थानू' लिखा है । 'तहाँ अवनि' से तात्पर्य वहाँ की धरती से है । लगता है, फारसी-लिपि की पांडुलिपियों में 'तहाँ अवनि' को 'तहाँ आई' या 'तहवाँ' पढ़ लिया गया है, जो ठीक नहीं ।

मलिक मुहम्मद जायसी का घर आज भी जायस के "कंचाना-मुहल्ले" में खंडहरों के रूप में खड़ा है । पूरा मकान "लखौरी" पतली ईंटों का बना है । ध्यान से देखने पर पता लगता है कि उसका अगला-भाग बाद का बना है । पिछला हिस्सा पुराना है जो जायसी के समय का है । शेष भाग उनके किसी वंशज ने बढ़ाकर बना लिया है । पिछले तथा अगले भाग की ईंटों में समानता

जायसी का घर

---

[1] जायस नगर धरम अस्थानू ।
तहवाँ यह कवि कीन्ह बखानू ।।—डा० माताप्रसाद गुप्त

× ×

जायस नगर धरम अस्थानू ।
तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू ।।—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

होते हुये भी भिन्नता स्पष्ट है। बनावट में अन्तर है। नये-भाग की नवीनता उसे पुराने हिस्से से अलग करती है। ईंटें भी नयी गढ़ी प्रतीत होती हैं और उनमें पिछले भाग की ईंटों से अधिक ताजगी है। मेहराब, दरवाजे, खिड़कियाँ भी भिन्न हैं। पुराने मकान के भीतर एक नीम का पेड़ भी उग आया है। मकान का सदर दरवाजा उत्तर की ओर है। लगता है, पहले जायसी के मकान के सामने अच्छी जगह पड़ी थी। अब नहीं है। सामने पतली-सी सड़क है जिसे "मलिक मुहम्मद रोड" का नाम दिया गया है। दरवाजे के सामने एक पत्थर लगा है जिसे 'जायसी स्मारक' की संज्ञा दी जाती है किन्तु वह महाकवि के जीवन पर उपहास-सा लगता है। पत्थर में पद्मावत का अंतिम दोहा लिखा है :—

केई न जगत जस बेंचा, केइँ न लीन्ह जस मोल।
जो यह पढै किहानी, हम सेवरैं दुइ बोल॥

परिवार

जायसी के पिता का नाम 'मलिक राजे अशरफ' था। जिनका देहान्त जायसी के बचपन में ही हो गया था। पिता का नाम 'राजे' मात्र था। मलिक उपाधि है। अशरफ शब्द उनके गुरु के नाम का प्रतीक-सा लगता है। मेरा अनुमान है सै० हाजी कत्ताल अशरफ साहब जायसी के पिता के गुरु थे। जायसी के तीन भाई भी होने का पता लगता है। उनके नाम यह बताये जाते हैं— मुहम्मद (मालिक मुहम्मद जायसी), मलिक शेख मुजफ्फर तथा शेख हाफिज। जायसी का विवाह जायस में ही मलिक परिवार की किसी लड़की से होना बताया जाता है। इसके विषय में अधिक जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी। कुछ लोगों का अनुमान है कि जायसी का विवाह ही नहीं हुआ। यह बात ठीक नहीं जँचती। जायसी का विवाह हुआ है। सन्ताने भी हुई हैं। किन्तु सभी सन्ताने अकाल काल कवलित हो गयी थीं।

जायसी-साहित्य के कुछ विद्वानों का मत है कि उनके केवल एक सन्तान हुई थी। वह पुत्र था, जो मकान की छत गिरने से दब गया था

ग्रौर इसी दुर्घटना में उसकी मृत्यु हो गई थी। यदि हम मकान की छ त गिरने की घटना को सत्य मान लें तो हमें शाह मुबारक

सन्ताने

बोदले के उस श्राप को भी सत्य मानना पड़ेगा जो उन्होंने जायसी को दिया था। उसी श्राप का परिणाम है कि जायसी का वंश-नाश हो गया। जायस वाले छत गिरने की घटना का सम्बन्ध शाह मुबारक बोदले के श्राप के साथ जोड़ते हैं। उनका कथन है कि जायसी के सात पुत्र थे। इसका प्रमाण 'कवायफे ग्रहमदिया' नामक हस्तलिखित फारसी पुस्तक में इस प्रकार है।

मलिक मुहम्मद जायसी के मुरशिद-पीर शाह मुबारक बोदले साहब को ग्रनिद्रा का रोग था। उन्हें रात-रात भर नींद नहीं ग्राती थी। वह बहुत परेशान रहा करते थे। विवश होकर उन्होंने हकीमों से परामर्श लिया। हकीमों ने तजबीज की कि 'पोस्ते का पानी' लाभदायक रहेगा। उसी तजवीज के ग्राधार पर वह पोस्ते का पानी पीने लगे। उससे लाभ हुग्रा। रात में ग्रच्छी नींद ग्राने लगी।

जायसी को यह बात ज्ञात न थी कि उनके 'मुरशिद-पीर' शाह मुबारक बोदले साहब पोस्ते का पानी पिया करते हैं। इसी मध्य में जायसी ने ग्रपनी पुस्तक 'पोस्तीनामा' की रचना की। 'पोस्तीनामा' जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है पोस्ता पीने वालों की बुराई में लिखा गया था। जायसी उसे ग्रज्ञानतावश ग्रपने 'मुरशिद-पीर' को सुनाने ले गये। इस पर शाह मुबारक बोदले बहुत ही रुष्ट हुए। उन्होंने समझा कि जायसी ने मेरी ही बुराई की है। फलस्वरूप उन्होंने जायसी को श्राप दे दिया कि तेरा वंश-नाश हो जाय।

फारसी की पुस्तक "कवायफे ग्रहमदिया[१]" में उक्त घटना से सम्बन्धित शब्दावली निम्नांकित है—

---

[१] 'कवायफे ग्रहमदिया' सूफी संत सै० ग्रशरफ जहाँगीर तथा ग्रन्य सूफी सन्तों की जीवन गाथा एवं वंश वृक्ष की फारसी पुस्तक है, जो हस्तलिखित है ग्रौर जायस के मियाँ कयूम ग्रशरफ के पास सुरक्षित है।

"......इरशाद शुद कि तोरा मालूम न बूद–
कि पीरत पोस्तीस्ति व मुजर्रद ए ताब चंद–
फरजंद 'मलिक साहब' दरखाने खुद यकजा
त-श्राम मि खुरदन श्रज उफतादन सतह
बाम हमा मुरदन"

× × ×

("क्या तुम्हें मालूम न था कि तुम्हारा गुरु पोस्ते का पानी पीता है ?" इतना कहकर उन्होंने श्राप दे दिया। मलिक मुहम्मद के लड़के घर में इकट्ठा बैठे खाना खा रहे थे। सब के सब दब कर मर गये।")

उक्त उद्धरण में 'चंद-फरजंद' शब्द श्राया है। जिसका श्रर्थ है मलिक साहब के कुछ लड़के। इससे स्पष्ट है कि उनके एक लड़का नहीं, कई लड़के थे। मलिक मुहम्मद जायसी के कितने लड़के थे ? इसकी पुष्टि उक्त पुस्तक के निम्नांकित उद्धरण से होती है।

जायसी के जब सभी पुत्र, शाह मुबारक बोदले के श्राप से दब कर मर गये तो वह रोते-चिल्लाते उनके पास गये। उनसे उन्होंने क्षमायाचना की। 'पोस्तीनामा' लिखने के विषय में माफी माँगी। श्रपनी श्रनभिज्ञता प्रकट की, "मुझे ज्ञात नहीं था कि किसी कारणवश आप स्वयं पोस्ते का पानी पीते हैं। मैंने तो केवल सर्वसाधारण को इस नशीली-वस्तु के सेवन से बचने के लिये ही 'पोस्तीनामा' पुस्तक का प्रणयन किया था।" जायसी की बात उनके मुरशिद-पीर की समझ में श्रा गयी। वह श्रपने शिष्य के विलाप पर बहुत दुखी हुए। पर, श्रब हो ही क्या सकता था, जो होना था, हो चुका था। उन्होंने जायसी को सांत्वना देते हुए कहा—

इरशाद शुद कि हफ्त पिसरानत श्र कमाये-
इलाही फौत शुदन खातिर जमादार कि चहारदह
किताब श्रज मुसन्नेफात तो बिनावर यादगार
ता कयामत श्रज पिसरान बेहतर श्रस्त।

तुम्हारे सात लड़के मरे हैं। संतोष करो। तुम्हारी चौदह पुस्तकें कयामत तक यादगार रहेंगी। अर्थात् लड़कों का भौतिक शरीर नश्वर था। वह तो मरते ही। हो सकता है उनका कोई नाम लेने वाला भी न होता किन्तु मैं तुम्हें सात पुत्रों के स्थान पर चौदह पुत्र (चौदह पुस्तकें) देता हूँ। तुम्हारे यह पुत्र (किताबें) कयामत तक जीवित रहेंगे।

इस घटना को यदि हम सत्य न मानकर एक किंवदंती ही मान लें, तब भी इतना तो स्पष्ट ही हो जाता है कि मलिक मुहम्मद जायसी निःसन्तान नहीं थे। उनका घर पुत्रों से भरा था। उनके सात पुत्र थे, जो दैवी दुर्घटना के शिकार हुए। आखिरी कलाम की 'जेहि हित सिरजा सात समुंदा—सातहु दीप भये एक बुँदा' चौपाई में यही संकेत है।

जायसी के गुरु

सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न है जायसी की 'गुरु-परम्परा' का। इस विषय पर काफी मतभेद चल रहा है।[१] इस मतभेद के कारण स्वंय जायसी हैं। उन्होंने सूफी-परम्परा के अनुसार अपने एक गुरु नहीं, प्रत्युत सम्पूर्ण 'गुरुओं' की वंदना की है।[२] सबके लिये 'गुरु' शब्द का प्रयोग किया है। अतः कोई इनकी गुरु-परम्परा का सम्बन्ध निजामुद्दीन औलिया से जोड़ता है, कोई मुहीउद्दीन से। आचार्य शुक्ल इन्हें सै० जहाँगीर अशरफ का शिष्य मानते हैं। यह बात सत्य है कि जायसी निजामुद्दीन औलिया की शिष्य-परम्परा में थे। वह इन्हें अपना 'आदि-गुरु' मानते थे। यह परम्परा दो शाखाओं में विभक्त हो गई। एक मानिकपुर की दूसरी कछौंछा, तहसील टांडा, जिला फैजाबाद की। निजामुद्दीन औलिया की शिष्य परम्परा की दोनों शाखाओं का विस्तृत वंश-वृक्ष यों है।

---

[१] डाक्टर ग्रियर्सन ने 'शेख मोहदी' को जायसी का गुरु माना है।

[२] 'गुरु वंदना से इस बात का ठीक-ठीक निश्चय नहीं होता कि वह मानिकपुर के मुहीउद्दीन के मुरीद थे अथवा जायस के सैयद अशरफ के।'—आचार्य शुक्ल
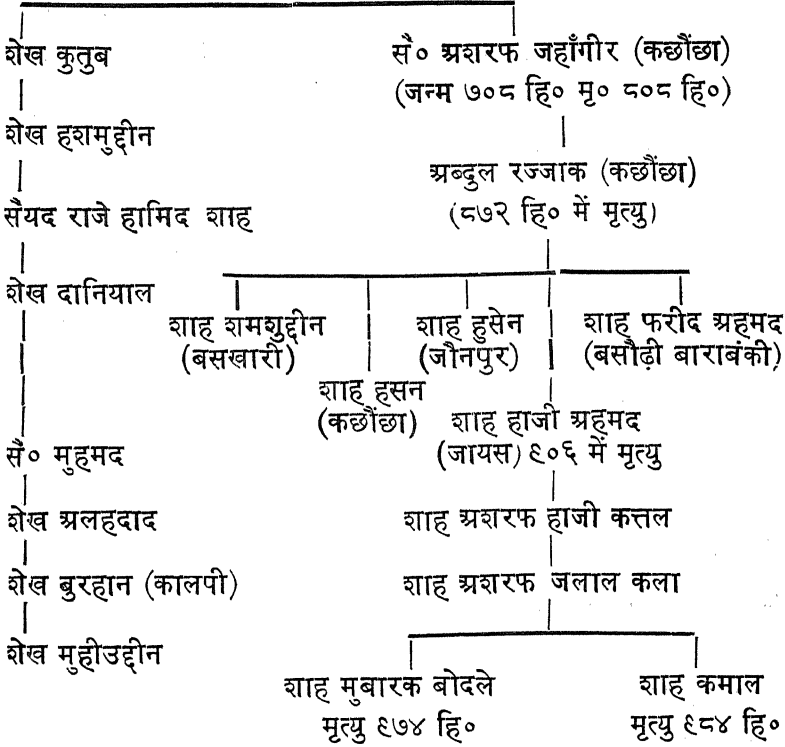
दूसरी शाखा बाद में पाँच भागों में विभक्त हो गयी थी। सै० अशरफ जहाँगीर का सम्बन्ध दूसरी शाखा से ही है। उनके 'मुरशिद-पीर' शाह अलाउल हक पांड्वी, जिला मालदा, प० बंगाल में थे। सै० अशरफ साहब उन्हीं के शिष्य थे।

प्रथम शाखा मानिकपुर की है। इस शाखा का भी सम्बन्ध शाह अलाउल हक पांड्वी से है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं डा० मनमोहन

गौतम ने सै० अशरफ जहाँगीर का जो वंश-वृक्ष दिया है वह अपूर्ण एवं भ्रामक है। वास्तव में सै० अशरफ साहब जायस में थे ही नहीं। वह कछौंछा में थे। बाद में यही कछौंछा वाली शाखा पाँच भागों में विभक्त हो गई जिसमें एक जायस भी था। मेरे कहने का तात्पर्य यह कि निज़ामुद्दीन औलिया से लेकर शाह अलाउल हक पांड्वी तक एक शाखा चली है। इसके बाद यह शाखा दो भागों में विभक्त हो गई—कछौंछा एवं मानिकपुर। कछौंछा की शाखा पाँच भागों में बँट गई एवं मानिकपुर की शाखा कालपी तक जा पहुँची।

उपर्युक्त वंश-वृक्ष में अनेक तथ्यों का निरूपण अपने आप हो जाता है। निजामुद्दीन औलिया से लेकर शाह कमाल तक जो वंश-वृक्ष दिखाया गया है उसमें जन्म अथवा मृत्यु-संवत् का भी निर्देश है। इससे जायसी के गुरु को समझने में सरलता हो गई है। जैसा कि मैंने ऊपर निर्देश किया है कि कुछ लोग सै० अशरफ जहाँगीर को जायसी का गुरु मानते हैं कुछ लोग शेख मुहीउद्दीन को। किन्तु यह दोनों जायसी के गुरु नहीं थे। यदि हम सैयद अशरफ जहाँगीर को जायसी का गुरु मान लें तो समय पर भी विचार करना पड़ेगा। जायसी का जन्म "भा अवतार मोर नौ सदी" के आधार पर नवीं शताब्दी माना जाता है। नवीं शताब्दी का अर्थ विद्वानों ने नवीं शताब्दी के आस-पास अर्थात् ९०६ हि० लगाया है। पद्मावत का रचना काल सं० ९४७ हि० है। ऐसी स्थिति में सैयद अशरफ जहाँगीर को जायसी का गुरु सिद्ध करना उचित नहीं प्रतीत होता क्योंकि सैयद अशरफ साहब का जन्म ७०५ हि० है तथा मृत्यु ८०८ हि० में है। जायसी के जन्मकाल एवं सैयद अशरफ की मृत्यु में लगभग १०० वर्ष का अन्तर है। अतः सै० अशरफ जहाँगीर निर्विवाद रूप से जायसी के गुरु नहीं थे और न हो सकते हैं। जो उन्हें जायसी का गुरु मानते है उन्हें भ्रम है।

सै० अशरफ साहब निःसन्तान थे। कुछ लोगों का अनुमान है उन्होंने विवाह ही नहीं किया। अपने गुरु शाह अलाउल हक पांड्वी के परामर्श से उन्होंने अपने भांजे सै० अब्दुल रज्जाक को अपना उत्तराधिकारी बनाया था। यह अब्दुल रज्जाक साहब, मुहीउद्दीन अब्दुल कादिर की बारहवीं पुस्त में होने वाले प्रसिद्ध सूफी संत शाह हसन "जेली" के पुत्र थे। इन्हें बगदाद से लाया गया था। इनकी आयु उस समय केवल १२ वर्ष की थी। अब्दुल रज्जाक साहब की मृत्यु सं० ८७२ हि० में हुई। अतः वे जायसी के गुरु नहीं सिद्ध होते। उनकी मृत्यु एवं जायसी के जन्म में ३४ वर्ष का अन्तर पड़ता है। इसके पश्चात् जायसी की गद्दी के पीर शाह हाजी अहमद हुये। इनकी मृत्यु सं० ९०६ हि० है। यही संवत् जायसी का जन्मकाल माना जाता है। अतः शाह हाजी अहमद भी जायसी के गुरु नहीं हो सकते। इसके पश्चात् हाजी कत्ताल एवं शाह जलाल कला का नाम आता है। इन दोनों संतों के जन्म एवं मृत्यु सं० का पता नहीं लग सका। ऐसा प्रतीत होता है यह दोनों पीर अल्पकालीन थे। इसके बाद शाह मुबारक बोदले एवं शाह कमाल साहब जायस की गद्दी के पीर हुये। शाह मुबारक बोदले की मृत्यु सं० ९७४ हि० तथा शाह कमाल की ९८४ हि० है। पद्मावत का रचनाकाल ९४७ हि० है। इससे यह प्रतीत होता है कि जायसी के समकालीन शाह मुबारक बोदले और शाह कमाल साहब ही थे यही निर्विवाद रूप से जायसी के गुरु थे।

पद्मावत के आधार पर ही जायसी के गुरु का भी पता लग जाता है। सै० अशरफ को जायसी ने 'पीर' कहा है।[१] वह 'मुरशिद पीर' पीर थे भी। किन्तु 'मुरशिद-पीर' नहीं थे यहाँ पर 'पीर' एवं 'मुरशिद-पीर' का अन्तर भी समझ लेना

---

[१] सैयद अशरफ 'पीर' पियारा—पद्मावत

करी तरीकत 'चिस्ती पीरु' - अखरावट

आवश्यक है। सूफी-सन्तों की शिष्य परम्परा में होने वाला प्रत्येक सन्त 'पीर' कहलाता है। 'मुरशिद पीर' केवल वह कहलाता है, जो गुरु-मंत्र दे। यही कारण है कि जायसी ने सै० अशरफ जहाँगीर चिस्ती को 'पीर' तो कहा है किन्तु मुरशिद-पीर कहीं भी नहीं कहा क्योंकि सै० अशरफ साहब से उन्होंने गुरु-मंत्र नहीं लिया। अतः वह उनके 'मुरशिद-पीर' हो ही नहीं सकते थे। इसी प्रकार मुहीउद्दीन साहब को जायसी ने 'आदि गुरु' के रूप में स्मरण किया है।[1] 'गुरु मोहदी खेवक मैं सेवा' आदि उद्धरण इसके प्रमाण हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जायसी ने इन सूफी सन्तों की वंदना 'पीर' और 'आदि गुरु' के रूप में की है अपने 'मुरशिद-पीर' (दीक्षा गुरु) के रूप में नहीं। मुरशिद-पीर उन्होंने शाह मुबारक बोदले एवं शाह कमाल साहब को ही लिखा है। पद्मावत का 'स्तुति खंड' इसका प्रमाण है।

सैयद अशरफ 'पीर' पियारा-जेहि मोहि पंथ दीन्ह उजियारा।

× × × ×

तेहि घर रतन एक निरमला, हाजी सेख सभागे कला।
तेहि घर दुइ दीपक उजियारे-पंथ देइ कहँ दैव सँवारे।
'शेख मुबारक' पुनि वा कला-'शेख कमाल' जगत निरमला।

यही शाह मुबारक बोदले एवं शाह कमाल साहब जायसी के दीक्षा-गुरु थे। इन्हीं दोनों सन्तों के प्रसंग में आया हुआ पद्मावत का अगला दोहा जायसी के वास्तविक गुरु की पुष्टि करता है :—

मोहमद तेइ पथ निरमल, जेहि संग 'मुरसिद पीर'।
जेहिरे नाउ कै करिआ, बेगि पाउ सो तीर॥

---

[1] यह 'गुरु मोहदी' मानिकपुर वाले मुहीउद्दीन नहीं हैं। यह मुहीउद्दीन अब्दुल कादिर साहब हैं, जो बगदाद के रहने वाले थे और सैय्यद अशरफ के उत्तराधिकारी अब्दुल रज्जाक के पिता शाह हसन 'जेली' के बारह पुस्त पूर्व हुये थे। अतः इन्हें आदि गुरु कहा जाता है।

यही पूर्ण चन्द्र की कला से शुभ्र, जगत निरमला शेख मुबारक बोदले एवं कमाल साहब जायसी के मुरशिद-पीर (दीक्षा-गुरु) थे।

जायसी के इतना स्पष्ट लिख देने पर भी विद्वानों की शंका का समाधान नहीं हुआ और वे भटकते रहे। वास्तविकता यह है कि शाह मुबारक बोदले एवं शाह कमाल साहब दोनों टक्कर के सन्त थे। दोनों का समान स्थान था और दोनों पूज्य थे। अतः जायसी ने दोनों को 'मुरशिद-पीर' कहा है। यहाँ पर यह भी ध्यान देने योग्य है कि दोनों 'पीरों' की गद्दी एक थी। दोनों में समरूपता थी। केवल नाम का अन्तर था। जायसी ने वही 'सम-भाव' व्यक्त किया है।

महात्मा 'मनदास कृत' जायसी के ग्रन्थों की जो पांडुलिपि मुझे मिली है,[1] उसमें भी महात्मा जी ने लिखा है :—

मलिक मुहमद की कथा, यह नाम कहि पदुमावती।
इस्क-पूरन, प्रेममय, बैराग, विरह, बढ़ावती॥

× × ×

बड़े शिष्य कमाल साहब मलिक मुहमद जानिये।
तिन्ह को जनम-अस्थान कहिये नगर जायस मानिये॥
तज्यो तन जब मलिक साहब गढ़ अमेठी जाइकै।
....॥

महात्मा मनदास के डेढ़ सौ वर्ष पुराने उक्त परिचयात्मक छंद, पद्मावत के उद्धरण, वंश-वृक्ष एवं तिथियों के क्रम-निर्देश से स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि जायसी के गुरु 'सैयद अशरफ' अथवा 'मोहदी' नहीं, शाह मुबारक बोदले एवं कमाल साहब हैं।

पद्मावत के स्तुति खंड एवं 'आखिरी कलाम' में जायसी ने अपने

[1] पांडुलिपि सं० २

जायसी के मित्र

चार मित्रों का उल्लेख किया है। पद्मावत में उन्होंने नाम भी दे दिये हैं। पद्मावत की प्रकाशित प्रतियों को देखने से पता लगता है कि उनके चार मित्र क्रमशः 'मलिक यूसुफ', 'सालार कादिम', 'सलोने मियाँ', एवं 'बड़े शेख' थे। मेरी दोनों पांडुलिपियों में उनके तीन मुसलमान एवं एक हिन्दू मित्र का नाम है। उन पंक्तियों को मैं अविकल रूप से उद्धृत कर रहा हूँ।

चारि मीत कवि महमद पाये, जोरे मते सो सिर पहुँचाये।
'इसफ मलिक' पंडित बड़ ग्यानी, पहिले भेद बात उन्ह जानी।
मियाँ सुलेमा सिंघ अपारु—बीर खेत रन खरग जुभारु।
खिद्‌रस लाल पुन्य मतिमाहा—खांड़े दान डूभि नित चाहा।
बड़े सेख बड़ सिद्ध बखाने—कै आदेश सिद्ध बड़ माने।

'सालार कादिम' के स्थान पर 'खिदरस लाल' का नाम आश्चर्य में डालने वाला है। यह नाम भी कुछ अजीब सा है। फिर भी इस पर सन्देह नहीं किया जा सकता कि जायसी जैसे सन्त का कोई हिन्दू मित्र न रहा हो। जायस वालों का कथन है कि जायसी की मित्रता यहाँ के कायस्थों के परिवार से थी। 'खिदरिस लाल' नाम कायस्थों का सा प्रतीत होता है। फिर भी, इसकी पुष्टि नहीं हो सकी। कायस्थों के परिवार का 'वंश-वृक्ष' खोजा गया, पर मिल नहीं सका। यदि 'खिदरस लाल' कायस्थों के परिवार के हैं तो शीघ्र ही इसकी पुष्टि हो जायगी।

जायसी के ग्रन्थ

महाकवि जायसी के ग्रन्थों की जो सूची नागरी प्रचारिणी सभा, बंगाल एशियाटिक सोसायटी एवं अन्य सम्मानित संस्थाओं एवं विद्वानों द्वारा निश्चित की गई है उसके अनुसार उनके ग्रन्थों की संख्या २० है। ग्रन्थों के नाम निम्नांकित हैं :—

(१) पद्मावत, (२) अखरावट, (३) आखिरी कलाम, (४) चम्पावत (५) सखरावत, (६) इतरावत, (७) महरी बायसी, (८) पोस्ती नामा, (९) खुर्वानामा, (१०) मटकावत, (११) मोराई नामा, (१२) मुकहरानामा, (१३) महरानामा, (१४) नैनावत, (१५ कहार नामा, (१६) मेखरावट-नामा, (१७) घनावत, (१८) स्फुट छंद, (१९) सोरठ, (२०) परमार्थ जपजी (२१) [चित्ररेखा]।

जायसी ने वास्तव में इतने ही ग्रन्थ लिखे हैं। अथवा उनके ग्रन्थों की संख्या इससे न्यूनाधिक है। यह एक विवाद का प्रश्न है। फिर भी मेरा विश्वास है कि जायसी के ग्रन्थों की संख्या कम से कम पन्द्रह और अधिक से अधिक १७ है। 'पोस्तीनामा' जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है जायसी का प्रथम अथवा द्वितीय ग्रन्थ है। बाद में अपने 'मुरशिद-पीर' शाह मुबारक बोदले के आशीर्वाद स्वरूप "चहारदह किताब अज मुसन्नेफात········।" उन्होंने चौदह पुस्तकें और लिखीं। इस प्रकार 'पोस्तीनामा' जो इन चौदह पुस्तकों के पूर्व का ग्रन्थ है—को मिलाकर जायसी के ग्रन्थों की संख्या पन्द्रह होनी चाहिये। पोस्तीनामा के पूर्व भी अधिक-से-अधिक जायसी ने दो-एक ग्रन्थ या स्फुट रचनाएँ लिखी होंगी। क्योंकि वह उनका प्रारम्भिक काल था। प्रारम्भ में ही किसी कवि से दर्जनों महाकाव्य की आशा नहीं की जा सकती। पहले वह छोटी-छोटी स्फुट रचनाएँ ही लिखता है तब कहीं उसमें प्रबन्ध या महाकाव्य लिखने की क्षमता आ पाती है। मेरा विश्वास है जायसी ने पहले स्फुट पदों की रचना की होगी। तत्पश्चात् उन्होंने 'पोस्तीनामा' का प्रणयन किया। इसी पुस्तक से उन्हें श्राप मिला, वंश-नाश हुआ और वह दुखी एवं कातर हुए। "मा निषाद प्रतिष्ठाम्········" के अनुसार घायल हृदय में महाकाव्य के अंकुर फूटे। पद्मावत उसी का प्रतिफल है।

दूसरी विशेष बात यह है कि यदि मैं जायसी के ग्रन्थों की संख्या २०

ही मान लूँ तो भी वह १७ से अधिक नहीं होते । क्योंकि उक्त संख्या में एक ही ग्रन्थ को तीन-तीन बार भिन्न-भिन्न नामों से दिखाया गया है। उदाहरणार्थ जायसी के ग्रन्थ का नाम है—'कहरानामा' किन्तु उसे कहरानामा, महरानामा, महरी-बाइसी तीन नामों से अलग-अलग दिग्दर्शित किया गया है । वास्तव में कहरानामा, महरानामा और महरी-बाइसी यह तीनों अलग-अलग नहीं, एक ही ग्रन्थ हैं । मुझे प्राप्त 'कहरानामा' एवं 'महरी-बाइसी' एक ही हैं । हो सकता है, इसी प्रकार अन्य ग्रन्थ भी विभिन्न नामों से कई बार आ गये हों । अभी हाल में 'चित्ररेखा' नामक जायसी के एक नवीन ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ है । इन बीस नामों में 'चित्ररेखा' का नाम नहीं है । वास्तविकता यह है कि वह ग्रन्थ चित्ररेखा नहीं संभवतः चम्पावती है । किन्तु 'कहरानामा' को जिन्होंने 'महरी-बाइसी' बना दिया, उन्होंने यदि 'चम्पावती' को चित्ररेखा कर दिया तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है ।

'पोस्तीनामा' ग्रन्थ के विषय में मुझे विश्वास है कि वह जायसी के जीवनकाल में ही नष्ट हो चुका है । क्योंकि जिस ग्रन्थ के पीछे इतनी बड़ी दुर्घटना छिपी हो, जायसी के 'मुरशिद-पीर' का अपमान हुआ हो, उस ग्रन्थ को जायसी जैसा विवेकी-सन्त क्या जीवित रक्खेगा ? मेरे विचार से जायसी के ग्रन्थों की वास्तविक संख्या निम्नांकित है :—

(१) स्फुट रचनाएँ, (२) पोस्तीनामा, ३) पदुमावती, (४) अखरावती, (५) चम्पावती, (६) सखरावती, (७) नैनावती, (८) घनावती, (९) मोराई-नामा, (१०) कहरानामा, (११) मुकहरानामा, (१२) मेखरावटनामा (१३) मसलानामा, (१४) खुर्वानामा, (१५) इत्रावती, (१६) आखिरी कलाम ।

जायसी ने अपनी पुस्तकों के नामकरण में भी परम्परा का निर्वाह किया है । सूफी काव्य परम्परा की दृष्टि से 'पदुमावती' नाम शुद्ध है ।

'पद्मावत' अपभ्रंश-सा लगता है। नामकरण की परम्परा में जायसी की रचनाओं के नाम दो ही प्रकार के मिलते हैं 'वती' एवं 'नामा' जहाँ 'वती' के आधार पर नामकरण हुआ है वहाँ पदुमावती, अखरावती, चम्पावती, नैनावती आदि ग्रन्थ हैं। जहाँ 'नामा' को आधार माना गया है वहाँ मोराईनामा, मसलानामा, कहरानामा, आदि हैं। 'वती' और 'नामा' के अतिरिक्त अन्य नामों पर जायसी का कोई ग्रन्थ नहीं है। 'आखिरी कलाम' इसका अपवाद अवश्य है।

मृत्यु

जायसी की मृत्यु के सम्बन्ध में भी अनेकों मत हैं। अभी तक उनकी मृत्यु का कोई निश्चित समय नहीं मिल पाया। सैयद काजी नासिरुद्दीन के अनुसार जायसी की मृत्यु ९४९ हिजरी में हुई है। जायसी की मृत्यु का यह संवत् ठीक नहीं है। क्योंकि सं० ९४७ हि० में जायसी ने पद्मावत लिखना प्रारम्भ किया था।[1] ऐसी स्थिति में ९४९ हिजरी अर्थात् २ वर्ष पश्चात् ही मृत्यु हो जाना उचित नहीं प्रतीत होता।[2] जब कि पद्मावत जैसे ग्रन्थ के सम्पादन में ही दो-दो वर्ष लग जाते हैं। तब उसके प्रणयन में कितना समय न लगा होगा। सैय्यद आले मेहर साहब ने जायसी की मृत्यु ९९९ हि० लिखी है। यह समय ठीक प्रतीत होता है।

यह बात निर्विवाद है कि जायसी की मृत्यु 'अमेठी' में ही हुई है। 'कवायफे अहमदिया' में जायसी के जिन मित्र राजाओं का उल्लेख है उनमें अमेठी के राजाराम सिंह का भी नाम आता है। मृत्यु के समय की किंवदंती भी जायस-क्षेत्र में प्रसिद्ध है। शेर वाली घटना का उल्लेख श्री मनदास ने द्वितीय पांडुलिपि में इस प्रकार किया है—

---

[1] सन् नौ सै सैंतालिस अहा—कथा अरंभ वैन कवि कहा।

[2] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी इसका खंडन किया है।

तज्यो तन जब मलिक साहेब
गढ़ अमेठी जाइकैं।
धरि कै सेर सरूप कानन
हीन बैर बजाइ कैं।
पूरब जनम को बैर रह सों
दै कै भे तन मन अहा।
जाइ लीन्हे पास बड़क
विलास सुख आनंद सदा।

उक्त उद्धरण से पता लगता है कि अमेठी के राजाराम सिंह एवं मलिक मुहम्मद जायसी में पूर्व जन्म की शत्रुता थी। (जायसी जानते थे कि इस जन्म में उनकी मृत्यु वहीं होगी अतः उन्होंने राजा से बता दिया कि मेरी मृत्यु गोली से होगी। राजा ने प्रतिबन्ध लगा दिया था कि इस क्षेत्र में गोली न चलाई जाय।) जायसी ने शेर का स्वरूप धारण करके जोर से दहाड़ा। लोग इस दहाड़ से आतंकित हो गये। एक शिकारी ने गोली चला दी। जब घटनास्थल पर देखा गया तो वहाँ शेर नहीं, जायसी मरे पड़े थे। इस प्रकार उन्होंने पूर्व जन्म की शत्रुता पर तन, मन न्योछावर कर दिया। राजा के ऋण से उऋण होकर वह सदा-सर्वदा के लिये आनंदसागर में चले गये।[1]

यह एक जन-श्रुति मात्र है। लोक-जीवन में इस प्रकार की लोक-कथाओं का भी अपना महत्त्व होता है। सिद्ध महात्माओं के जीवन के साथ इस प्रकार की अनेकों कथाएँ जुड़ी रहती हैं। कुछ भी हो, यह निर्विवाद सत्य है कि जायसी की मृत्यु अमेठी में ही हुई है। वहीं उनकी समाधि भी है। अंत में मैं श्री मनदास के निम्नांकित उद्धरण से इस प्रसंग को समाप्त करता हूँ।

[1] डा० मनमोहन गौतम एवं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने भी अपनी जायसी ग्रन्थावली में इस घटना का उल्लेख किया है किन्तु उसमें पूर्व जन्म के बैर वाली बात नहीं है।

कहाँ राजा, कहाँ रानी, कहाँ सो गढ़ जानिये।
मलिक मुहमद कहि किहानी, घटहिं सो पहिचानिये ।।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपनी 'जायसी ग्रन्थावली' के सम्पादन में जिन प्रतियों का आश्रय लिया है वह निम्नांकित हैं :—

पद्मावत का शुद्धीकरण

१—नवल किशोर प्रेस की प्रति।

२—पं० रामसजन मिश्र द्वारा सम्पादित काशी के चन्द्रप्रभा प्रेस की प्रति।

३—कानपुर के किसी पुराने प्रेस की फारसी प्रति।

४—डॉ० ग्रियर्सन एवं पं० सुधाकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित प्रति।

इन चारों प्रतियों से उन्होंने जो शुद्धता का तत्त्व निकाला उसकी प्रतीक उनकी 'जायसी ग्रन्थावली' है, जिसका प्रकाशन काशी नागरी प्रचारिणी सभा से हुआ है। इसके अतिरिक्त शुक्ल जी के पास कैथी लिपि की एक हस्तलिखित प्रति भी थी। इसमें सन्देह नहीं कि आचार्य शुक्ल जी ने अत्यधिक परिश्रम करके 'जायसी ग्रन्थावली' का सम्पादन किया है। एक रास्ता निकाला है। सर्वप्रथम शुद्ध प्रति होने के नाते आचार्य शुक्ल की उक्त ग्रन्थावली की वंदना की जा सकती है किन्तु मुझे ऐसा लगता है कि इस समय की सबसे अशुद्ध प्रतियों में यदि कोई है तो वह आचार्य शुक्ल जी द्वारा सम्पादित 'जायसी ग्रन्थावली' ही है। इस ग्रन्थावली में इतने अधिक 'भरती' के शब्द हैं जिनका अर्थ 'शब्दकोश' में भी खोजने पर नहीं मिलता। हो सकता है उन्हें इसी प्रकार की पांडुलिपियाँ मिली हों।

द्वितीय 'जायसी ग्रन्थावली' डॉ० माताप्रसाद जी गुप्त द्वारा सम्पादित है। इसका प्रकाशन हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद ने किया है। डॉ०

गुप्त जी ने अपनी 'जायसी-ग्रन्थावली' का सम्पादन छपी प्रतियों के अतिरिक्त ७ अन्य पांडुलिपियों के आधार पर बहुत ही परिश्रम से किया है। उक्त प्रतियों में 'एडिनबरा' यूनीवर्सिटी से प्राप्त पांडुलिपि भी हैं। कामन वेल्थ रिलेशन्स आफिस लंदन की प्रति भी उन्हें इसी कार्य के लिये प्राप्त हुई है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पद्मावत की प्रकाशित प्रतियों में सबसे शुद्ध डॉ० गुप्त जी की ही 'जायसी ग्रन्थावली' है। इससे बहुत सी भ्रामक बातों का निराकरण हो गया है। अनेकों दुरूह स्थल स्पष्ट हो गये हैं। डॉ० गुप्त जी ने 'आदि प्रति की भाषा' के प्रसंग में लिखा है—"पद्मावत की शब्दावली से पर्याप्त रूप से परिचित न होने के प्रमाण उसके प्रतिलिपिकारों में ही नहीं, सम्पादकों में भी मिलते हैं।"[1] किन्तु मुझे दुख है कि इस प्रकार की त्रुटि स्वयं डॉ० गुप्त जी भी कर गये हैं। यद्यपि उन्होंने सभी पांडुलिपियों का 'पाठ-भेद' दिखाकर बहुत ही शास्त्रीय ढंग से अपनी ग्रन्थावली का सम्पादन किया है फिर भी, लगता है डा० गुप्त जी पद्मावत की शब्दावली से परिचित होते हुये भी, जायसी की 'क्षेत्रीय बोली' के शब्दों से अपरिचित रहे हैं। अन्यथा आचार्य शुक्ल जी की अशुद्धियों की पुनरावृत्ति डॉ० गुप्त द्वारा सम्पादित 'जायसी ग्रन्थावली' में न होती।

तृतीय 'जायसी ग्रन्थावली' डॉ० मनमोहन गौतम जी की है। इसका प्रकाशन 'रीगल बुकडिपो' दिल्ली से हुआ है। डॉ० गौतम जी ने पांडुलिपियों का सहारा न लेकर प्रकाशित 'जायसी ग्रन्थावलियों' के आधार पर दो सम्पादकों के मतभेदों से लाभ उठाकर एक तीसरी जायसी ग्रन्थावली तैयार कर दी है। इस ग्रन्थावली में उक्त दोनों ग्रन्थावलियों की छाया है। लगता है, इसका सम्पादन 'टेस्ट बुक' के रूप में किया गया है। इसके सम्पादन का ढंग भी कोर्स की किताब जैसा है। हो सकता है डॉ० गौतम

---

[1] जायसी ग्रन्थावली—भूमिका पृष्ठ २६

का दृष्टिकोण विद्यार्थियों के समक्ष पद्मावत का सरल पाठ उपस्थित करना ही रहा हो।

उक्त तीनों ग्रन्थावलियों के अतिरिक्त डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का 'पद्मावत भाष्य' है। यह भी एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। जायसी के साहित्य एवं जीवन-दर्शन को इस ग्रन्थ से पर्याप्त लाभ पहुँचा है। साथ ही साथ पद्मावत का 'साधारणीकरण' भी हो गया है। यह अपने ढंग का अनूठा प्रयास है।

हो सकता है उक्त ग्रन्थावलियों के अतिरिक्त और भी हों किन्तु वे मुझे देखने को नहीं मिलीं। मुझे कुछ ऐसा लगता है कि इन भाष्यों तथा टीकाओं में व्यक्तिगत विद्वता की स्पर्धा अधिक है, शुद्धीकरण की विचार-धारा कम ! यही कारण है कि जायसी के ग्रन्थों का शुद्ध-पाठ सैकड़ों वर्षों के पश्चात् भी, अब तक नहीं आ सका। यही नहीं, जायसी के जीवनवृत्त पर भी सही प्रकाश नहीं पड़ सका।

मुझे जो पांडुलिपि प्राप्त हुई है[1] उससे, 'जायसी ग्रन्थावलियों' का मिलान करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे विद्यालयों में जायसी के ग्रन्थों का चालीस प्रतिशत भाग अशुद्ध पढ़ाया जा रहा है। इसका मूल कारण यह है कि जायसी साहित्य के विद्वान् एवं शोधकर्ता एक निश्चित दायरे के अन्दर घुमते रहे हैं। कोई जायसी के 'जन्म स्थान' तक आया भी है तो केवल दो-चार घण्टों के लिये। फलस्वरूप वह यहाँ पर उपलब्ध सामग्री न तो पा सका है, न उसे नवीन जानकारी ही हो पाई है। फारसी, बंगला तथा अन्य भाषाओं की पांडुलिपियों का हिन्दी रूपान्तर करने से भी बहुत गड़बड़ी पैदा हो गई है। कुछ शब्द जो क्षेत्रीय बोली विशेषतया 'वैसवारी' के हैं, उनका अर्थ न समझ सकने के कारण रूप ही परिवर्तित: कर दिया गया है। उदाहरणस्वरूप मैं डॉ० माताप्रसाद जी गुप्त द्वारा

---

[1] पांडुलिपि सं० २

सम्पादित 'जायसी ग्रन्थावली' का प्रारम्भिक अंश लेता हूँ। पृष्ठ १२२ का दूसरा दोहा है—

अशुद्ध पाठ (१)—निमिख न लाग कर ओहि, सबइ कीन्ह पल एक।
गगन अंतरिख राखा, बाज खंभ, विनु टेक।
—द्वि० १, तृ० २ बाझ, द्वि० ६ बाछ

उक्त दोहे में यह 'बाज' शब्द क्या है ? शब्दकोश में जिसे सं० 'वर्ज्य' बताया गया है वह किस भाषा का शब्द है ? हिन्दी शब्दसागर में इसे एक शिकारी पक्षी कहा गया है। बंगला तथा तीर में लगा हुआ पर भी बाज बताया गया है। तथा जायसी के उक्त दोहे का उद्धरण देकर बाज का अर्थ 'बिना' भी लगाया गया है (क्योंकि शब्दसागर का सम्पादन भी आचार्य शुक्ल ने ही किया है) वास्तव में यह फारसी शब्द है। इसका अर्थ है 'लौटना', फारसी में बोला जाता है—"बाज-बे-आ" अर्थात् "फिर लौट कर आ"। इस 'बाज' शब्द से तथा जायसी के उक्त दोहे से क्या सम्बन्ध। किन्तु भाष्य तथा टीकाकारों ने इसका अर्थ तोड़-मरोड़ कर निकाल ही लिया है। मुझे जो पांडुलिपि मिली है उसमें इस दोहे का पाठ यों है—

निमिख न लाग करत ओहि, सबै कीन्ह पल एक।
गगन अंतरिख राखा, बिनु खंभा, बिनु टेक!

अर्थ स्पष्ट है। यदि शुद्ध पाठ होता तो 'बाज' शब्द के लिये इतनी परेशानी न उठानी पड़ती। इसी प्रकार आठवाँ दोहा है :—

"ना वह मिला न 'बेहरा', अइस रहा भर पूरि।
'दिस्टिवंत' कहँ निअरें, अंध मुरुख कहँ दूरि।

(२)—इस 'बेहर' शब्द का क्या अर्थ है ? क्या यह 'अवधी' का शब्द है ? अवधी का है तो अवध के किस भाग में बोला जाता है ? टीकाकारों ने लिखा है—"बेहरा = अलग, विहरना, फटना" वास्तव में यह बुन्देल-

खण्डी शब्द है। वहाँ एक प्रकार की घास को 'बेहरा' कहा जाता है। मैं समझता हूँ कि यदि स्वयं जायसी भी होते तो इस प्रकार के शब्दों का अर्थ न बता पाते। इसका शुद्ध पाठ कितना सरल एवं स्वाभाविक है।

ना वह मिलै, न 'बीछुरै', अइस रहा भरि पूरि।
दीठिवंत कहँ नियरे, अंध मुरुख कहँ दूरि॥

वास्तव में शब्द 'बेहरा' नहीं, 'बीछुरै' है। 'मिलने' के साथ बिछुड़ने का ही सम्बन्ध है। फारसी लिपि में 'बेहरा' और 'बीछुरा' एक ही प्रकार लिखा जाता है अतः "नुक्ते के हेर-फेर से खुदा, जुदा हो गया।" अवधी में 'दिस्टि' शब्द नहीं बोला जाता। 'दीठि' बोला जाता है। "दीठि लगना" अवधी का मुहाविरा भी है जिसका अर्थ है नजर लगना।

(३)—इसी प्रकार चौपाई ७-१ देखिये—

अलख, अरुप, अबरन सो करता,
वह सब सों, सब ओहि सो बरता।

—द्वि० ५ प० १, एक बरनउँ सो, द्वि० ६ एक बरनौ बड़

उक्त अर्धाली का अर्थ है—जो अलख है, अरूप हैं, अबरन है, वही कर्ता है।" कर्ता (ईश्वर) के विशेषण हैं—अलख, अरूप, अबरन। वह सबसे ज्योतित है और सब उससे! सूफी सन्तों की 'प्रेम साधना' से यह चौपाई कोसों दूर चली गई है। इन सन्तों ने अलख की वंदना भले कर ली हो 'अरूप' की नहीं की। फिर, जहाँ ईश्वर की वंदना चल रही हो वहाँ 'वंदना' शब्द को गायब करके कर्ता के केवल विशेषण गिना दिये जायँ उचित नहीं प्रतीत होता। इसका शुद्ध पाठ यों है—

अलख-रूप बरनौं सो करता।
वह सब सों, सब ओहि सो बरता।

जायसी ने अलख के भी रूप का मोह नहीं छोड़ा। यही सूफी सन्तों

का जीवन दर्शन है। लगता है प्रतिलिपिकारों ने 'बरनौं' को अबरन करके एक और विशेषण बढ़ा दिया है।

(४) इसी के पश्चात् ११वाँ दोहा देखिये :—

गुन-औगुन विधि पूँछत, होई लेख औ जोख।
ओन्ह् बिनउब आगे होइ, करब जगत कर मोख।

—द्वि० ५—करइ, द्वि० ४, तृ० १—करत

उक्त दोहे में जायसी की शंका है—"अंत समय में मैं ईश्वर के पास पहुँचा हूँ। वह मेरे गुन-औगुन पूछ रहे हैं। मेरे कर्मों का लेखा-जोखा भी यहीं मौजूद होगा।" यहाँ तक तो बात समझ में आती है। अर्थ भी स्पष्ट है। किन्तु दूसरी पंक्ति का अर्थ समझ में नहीं आता। "मैं उनके (ईश्वर) सामने खड़ा होकर विनती करूँगा और संसार को मोक्ष दूँगा।" व्यक्तिगत गुन-औगुन एवं लेखे-जोखे से संसार के मोक्ष का क्या सम्बन्ध? यहाँ भक्त स्वयं अभियुक्त है। उसके कारनामे मौजूद हैं। फिर वह स्वयं संसार के मोक्ष का दावा कैसे कर सकता है? इससे प्रकट होता है कि दूसरी अर्धाली अशुद्ध है। उसका शुद्ध पाठ यह है—

गुन-औगुन विधि पूछत, होइहि लेख औ जोख।
कवन उतर तेहिं देबैं, केहि विधि पाउब मोख।

यहाँ तो उसे अपने मोक्ष की चिन्ता है न कि संसार की। प्रसंग व्यक्तिगत है, सांसारिक नहीं।

(५) इसी प्रकार ६-४ अर्धाली को देखिये –

परवत ढाह, देख सब लोगू, चाँटहिं करइ हस्तिकर जोगू।

इसका क्या अर्थ है? ईश्वर की समता कोई नहीं कर सकता, वह बड़े-बड़े पर्वतों को गिरा देता है। चींटी को हाथी की तरह कर देता है।[1] पर्वत के गिरने की तो बात समझ में आती है किन्तु इस ढ़हने के प्रसंग में चींटी और हाथी की समानता वाली बात समझ में नहीं आती। डॉ०

---

[1] डॉ० मनमोहन गौतम की टीका।

गुप्त ने भी इस चौपाई में अपनी अन्य पांडुलिपियों का हवाला नहीं दिया। इससे प्रकट होता है कि दूसरी अर्धाली अशुद्ध है। इसका शुद्ध-पाठ यह है।

"परबत ढहै देख सब लोगू। चांटहिं औ हस्ती सम जोगू।।"

"ढ़ाह[1] > ढहै[2] > ढहा[3]"

तीनों शब्दों में महान अन्तर है।

१—हमारे यहाँ पलाश की डालियों की छाया को 'ढ़ाह' कहते हैं।

२—'ढहै' शब्द का अर्थ है गिरै।

३—'ढहा' शब्द का अर्थ है गिरा (भूतकालिक क्रिया)।

अर्थ स्पष्ट हो गया—एक छोटी-सी चींटी और हाथी की कोई समानता न होते हुये भी वह उसे परबत की तरह ढहा देती है। यह ईश्वर की माया है। सब लोग देखते हैं।

यहाँ पर केवल पाँच उदाहरण मैंने पद्मावत के प्रारम्भिक स्थल से दिये हैं। प्रत्येक चौपाई में किसी-न-किसी शब्द की अवश्य अशुद्धि है। सम्पूर्ण पद्मावत तो अशुद्धियों का कोषागार है। जिसे शुद्ध करने की आवश्यकता है। 'अखरावट' 'आखिरी कलाम', एवं 'महरी बाइसी' की भी यही दशा है। इस छोटी-सी भूमिका में मैं इन सबको स्पर्श करना उचित नहीं समझता। मेरा उद्देश्य जायसी साहित्य के विद्वानों का ध्यान उक्त महाकाव्य के शुद्धीकरण की ओर आकर्षित करना मात्र है। किसी की मान्यताओं को चोट पहुँचाना नहीं।

डॉ० गुप्त के सामान्तर पाठों में पाठान्तर

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने 'प्रतियों का प्रतिलिपि सम्बन्ध' दिखाते हुये लिखा है—"किसी भी गन्थ की विभिन्न प्रतियों का प्रतिलिपि सम्बन्ध ऐसे पाठान्तरों से निर्धारित होता है जिन्हें निर्विवाद रूप से भूलें माना जा सके। 'पद्मावत' की प्रतियों में हमने जो आदर्श-बाहुल्य और पाठ-विकृति की प्रवृत्तियाँ देखी हैं, उसके अनन्तर यह कल्पना करना

हमारे लिये स्वाभाविक होगा कि प्रतियों में ऐसी भूलें कम रह गई होंगी जिन्हें प्रतिलिपिकार अज्ञात भाव से कर बैठते हैं।"

इसी आधार पर डॉ० गुप्त ने सामान्य-पाठ निर्धारित किया है। इस सामान्य पाठ में भी थोड़ा सा हेर-फेर करना आवश्यक है। डॉ० गुप्त के 'सामान्य-पाठ' में पांडुलिपि के अनुसार पाठ-भेद (अशुद्धियों) के मैं प्रारम्भिक सात उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ।

सामान्य—गुनी न कोई आपु सराहा।
जौं सो बिकाइ कहा पै चाहा॥ ८१-६
पाठान्तर—गुनी नाहि कोऊ आपु सराहा।
सो, जो बिकाइ कहै पै चाहा॥
सामान्य—डोलहिं बोहित लहरैं खाहीं।
खिन तर खिनहिं होहिं उपराहीं॥ १५०-६
पाठान्तर—डोलैं बोहित, लहरी खाहीं।
खिन तर कहँ, खिन ऊपर जाहाँ॥

× × ×

सामान्य—धावहिं बोहित मन उपराहीं।
सहस कोस एक पल महँ जाहीं॥ १४७-२
पाठान्तर—धावहिं बोहित, मन उपराहीं।
सहस कोस पल एकहिं माहीं॥
सामान्य—आगि जो उपनी ओहि समुँदा।
लंका जरी, ओहि एक बुँदा॥ १५३-२
पाठान्तर—आगि जो उपजी यही समुँदा।
लंका जरी, यही यक बुँदा॥
सामान्य—एहि ठाऊँ कहँ गुरु संग कीजै।
गुरु संग होइ पार तौ लीजै॥ १५६-२

पाठान्तर—एही ठाउँ कहँ गुरु संग लीजै।
गुरु संग होइ पार तौ कीजै॥

सामान्य—जौ पहिले अपुने सिर परई।
सो का काहु कै धरहरि करई॥ २०३-२

पाठान्तर—जौ पहिले अपुने सिर परई।
सो का काहु कै धरहरि धरई॥

सामान्य—कै जिय तंत मंत सो हेरा।
गएउ हेराय जबहिं भा मेरा॥ २१२-७,६

पाठान्तर—कै जिउ तंत मंत सो हेरा।
गयव हेराय जबहिं भा फेरा॥

सामान्य—दसईं अवस्था असि मोहि भारी।
दसएँ लखन होहु उपकारी॥ २५५-६,७

पाठान्तर—दसौं अवस्था अब मोहि भारी।
जूझे लखन, होहु उपकारी॥

८१·६ न कोई>नाहि कोऊ
जौं सो >सो, जो

'न कोई' खड़ी बोली का शब्द है। 'नाहिं कोऊ' अवधी है।

जौं = { जो / जब }
सो = वह

सो=सोई>(गुनी) सो गुनी का सम्बन्ध है।
जो=जो

१५०-६ =लहरैं खाहीं>लहरी खाहीं।
लहरैं खाहीं का अर्थ है—लहरों के थपेड़े खाना।
लहरी खाहीं का अर्थ है—भँवरों में चक्कर खाना।

जब बोहित डोल रहे हैं तब "खिन तर, खिनहि होहिं, उपराहीं" का अर्थ है "खिन तर होहिं, खिन उपराहीं होहिं।" 'उपराहीं' शब्द का स्वतः अर्थ है ऊपर जाना। उसके साथ 'होहिं' क्रिया कैसे लग सकती है।

यदि नहीं लगाते तो "खिनहिं होहिं" का कोई अर्थ नहीं। अतः यह पाठ अशुद्ध है। शुद्ध पाठ है—"खिन तर कहँ, खिन ऊपर जाहीं।"

१५३-२ उपनी > उपजी।

ओहि समुँदा > यही समुँदा।

ओहि एक बुँदा > यही यक बुँदा।

उपनी का अर्थ उपजी है। ओहि (वह) यही (यह) का अंतर कोई विशेष अंतर नहीं। डॉ० गुप्त जी का पाठ अधिक शुद्ध है।

१५६-२ एहि ठाऊँ > एही ठाउँ।

डॉ० गुप्त के सामान्य पाठ में "एहि को ह्रस्व करके ठाऊँ को दीर्घ कर दिया गया है। मेरी पांडुलिपि में 'एही' को दीर्घ करके "ठाउँ" को ह्रस्व कर दिया गया है। मात्राएँ बराबर हैं। हाँ, कीजै और लीजै में अवश्य अशुद्धता आ गई है। "गुरु का साथ किया जाता है, लिया नहीं जाता।" इसी प्रकार 'पार' लिया नहीं जाता, किया जाता है। अतः "गुरु संग कीजै"—के स्थान पर "गुरु संग लीजै" और "पार तौ लीजै" के स्थान पर "पार तौ कीजै" पाठ अधिक शुद्ध प्रतीत होता है।

२०३-२ { धरहरि > { धरहरि
{ करई { धरई

वास्तव में यह एक लोकोक्ति है। 'धरहरि' की नहीं जाती, धरी जाती है। अतः 'धरहरि करई' से, धरहरि धरई अधिक शुद्ध पाठ है।

२१२-७,६ जबहिं भा मेरा > जबहिं भा फेरा।

"गएउ हेराय जबहि भा मेरा" जब वह (ईश्वर) मेरा हुआ तब मैं स्वयं आस्तित्वहीन हो गया।" अर्थ शुद्ध है। पाठ भी शुद्ध है। किन्तु यहाँ पर ध्यान देने की बात यह है कि प्रथम अर्धाली में कवि "तंत-मंत" से 'हेर' रहा है। जब वह उसे ढूँढ़ रहा है तब अकस्मात ही उसका 'मेरा'

हो जाने का अर्थ समझ में नहीं आता। अकस्मात तो 'फेरा' होता है। कवि तंत-मंत से उसे ढूँढ़ता रहा, तब वह नहीं मिला। जब उसका फेरा हुआ तब कवि स्वयं अस्तित्वहीन होकर तद्रूप हो गया। अतः "जबहिं भा मेरा" से "जबहिं भा फेरा" पाठ अधिक शुद्ध प्रतीत होता है।

२५५=६-७ दसईं अवस्था 7 दसौं अवस्था।

"दसईं करना" एक लोकोक्ति है। कहा जाता है "नौ तक करे, मगर दसईं न करे" अर्थात् विश्वासघात अथवा प्राणघात न करे। कवि का तात्पर्य यहाँ अवस्था के विश्वासघात से है। जिसने उसे "मोहि मारी" के रूप में जर्जर कर दिया। अब यहाँ "दसयें लखन होहु उपकारी" समझ में नहीं आता। वास्तव में लखन के जूझने से ही कवि जर्जर हो गया है अतः 'जूझे लखन' पाठ अधिक शुद्ध प्रतीत होता है।

पदुमावत के तथाकथित 'शुद्ध पाठ' में कहीं-कहीं रोचक अशुद्धियाँ हो गई हैं। कुछ उदाहरण निम्नांकित हैं :—

अशुद्ध—कीन्हेसि धूप सीउ औ छाँहा। १-७
शुद्ध—कीन्हेसि धूप सीत औ छाँहा।
अशुद्ध—तन नाही जो डोलाव सो डोला। ८-३
शुद्ध—पग नाहीं चालै सो डोला।
अशुद्ध—जोबन मरम जान पै बूढ़ा।
मिला न तरुनापा जब ढूंढ़ा
शुद्ध—जोबन मरम न ...
मिलै न

अशुद्ध—लिखि न जाइ गति समुँद अपारु। १०-५

शुद्ध—लिखि न जाइ कवि समुँद अपारु।

अशुद्ध—दोसरइँ ठाँव दई ओइँ लिखे।
भये धरमी जो पाढित सिखे।। ११-५

शुद्ध—दुसरे नबी दइव वाहि लिखे।
भे धरमी जिन्ह परसत सिखे।।

अशुद्ध—चारि मीत जो मुहम्मद ढाऊँ।
चहुँक दूहूँ जग निरमर नाऊँ।। १२-१

शुद्ध—चारि मीत कवि मुहमद ठाऊँ।
सुनहुँ चहूँ कर निरमल नाऊँ।।

अशुद्ध—पुनि जो उमर खिताब सुहाए। १२-३

शुद्ध—दूजे उमर खिताब सुहाये।

अशुद्ध—हय गप सेन चलै जग पूरी।
परबत टटि उडहिं होइ धूरी।। १४-२

शुद्ध—हय गप सैन चलै जग पूरी।
परबत टूटि होहिं सब धूरी।

अशुद्ध—अगिलहिं काहिं पानि खर बाँटा।
पछिलेहि काहिं न कोदहुँ आंटा।। १४-७

शुद्ध—अगिलेन्ह काहि पानि खुर बँटा।
पछिलेन्ह काहु न कांदौ अँटा।।

उक्त थोड़े से उदाहरण पद्मावत के प्रारम्भ के हैं। इसी प्रकार सम्पूर्ण पद्मावत में ऐसी चौपाइयाँ हैं जिनके शाब्दिक हेर-फेर से अर्थ का अनर्थ हो गया है। शुद्धता एवं अशुद्धता का निर्णय उपर्युत उद्धरणों से पाठक स्वयं कर सकते हैं।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने पद्मावत के कुछ अंशों को प्रक्षिप्त मान लिया है।[1] यह सम्भव भी है। हो सकता है मूल पाठ में प्रतिलिपिकारों ने अपनी ओर से कुछ अंश मिला दिये हों। यह भी सम्भव है कि जिन्हें प्रक्षिप्तांश बताया जा रहा है उनमें कुछ छन्द जायसी के ही हों। भाषा, शैली, अभिव्यक्ति अंतर्ध्वनि एवं शब्दावली के आधार पर विचार करने पर लगता है इस प्रक्षिप्तांश में अनेक छन्द जायसी के हैं। कथा-क्रम एवं घटना-क्रम का एक तारतम्य होते हुये भी, इसे तोड़कर, प्रक्षिप्तांश सिद्ध करने की बात समझ में नहीं आती। उदाहरणार्थ पद्मावती एवं नागमती के सती होने का दृश्य है। दोहा (६४६) (जो प्रक्षिप्तांश नहीं है)

प्रक्षिप्तांश

आजु सूर दिन अथवा[2], आजु रैनि ससि बूडि।
आजु बांचि जिय दीजिअ, आजु आगि हम जूडि॥

इसके पश्चात् क्रम चलता है—

आजु सेस के करहिं संगती—आजु नागमति हो संग सती।
आजु सूर विन जग अंधियारा—आजु उकठि कंवल भा छारा॥
आजु इन्द्र इन्द्रासन खसा—आजु चंद कविलासहिं बसा।
आजु अचल ध्रुव ठाहर छांडा—आजु मुरंदा होइ जनु गाडा॥
आजु महेस जनु जोगी भयऊ—अंग विभूति जो संग लगि गयऊ।
आजु सुमेरु हालि, भुंइ काँपा—आजु बराह कमठ हिय कोपा॥
आजु गगन जनु चाहै फाटा—आजु मेघ जनु भादस बाँटा।

आजु महा परलौ भयो, आजु जगत पर बीत।
आजु रतन घर तोय रों, आजु सबौं भौ पीत॥[3]

---

[1] जायसी ग्रन्थावली, पृष्ठ ५५७, परिशिष्ट।

[2] "आजु, सुरिज, दिन अथवा"—द्वि० पांडुलिपि, प्र० पांडुलिपि।

[3] (६४७ अ) जायसी ग्रन्थावली, पृष्ठ ६४१, उक्त पाठ मेरी पांडुलिपि से दिया गया है। दोनों में पाठान्तर भी है।

किन्तु इस अंश को प्रक्षिप्तांश बताया गया है जबकि वर्णन का क्रम लगातार एक-सा चल रहा है। जायसी, जिन्होंने प्रत्येक दृश्य का विशद एवं व्यापक वर्णन किया है इस अवसर पर "आज सूर दिन अथवा..." लिखकर ही कैसे संतोष कर लेंगे। उनसे 'आजु' होनेवाली बहुत-सी अनहोनी बातों की अपेक्षा की जा सकती है। वही उन्होंने किया भी। अब समझ में नहीं आता कि दोहा (६४६) तो असली है और उसके नीचे वाली चौपाइयाँ प्रक्षिप्तांश कैसे हो गईं।

अखरावट

पद्मावत की भाँति अखरावट में भी अशुद्धियाँ हैं। पाठ-भेद की बात अलग है, अशुद्धियों की अलग। मुझे तो ऐसा लगता है कि अखरावट, पद्मावत से कहीं अधिक अशुद्ध है। पद्मावत के शुद्धीकरण का तो प्रयास किया गया है किन्तु अखरावट आचार्य शुक्ल की 'ग्रन्थावली' का मूल रूप ही प्रतीत होता है। उसका यही रूप प्रायः सभी "जायसी ग्रन्थावलियों में दृष्टि-गोचर हो रहा है। इसके प्रारम्भिक रूप के कुछ अंश का पाठान्तर पाडुलिपि सं० २ के अनुसार प्रस्तुत है। यों सम्पूर्ण अखरावट इसी प्रकार की अशुद्धियों से परिपूरित है।

सामान्य—आदिहु ते जो आदि गोसाईं।
जेइ सब खेल रचा दुनियाई।। १-१

पाठान्तर—आदिहि-अंत सो एक गोसाईं।
जेइ सब खेल कीन्ह दुनिआई।।

सामान्य—जौ वै आनि जोति निरमई।
दीन्हेसि ग्याँन समुझि मोहि भई।। १-४

पाठान्तर—जो वोइ आना तौ हौं आवा।
दिहिसि ग्यान समुझा मैं गावा।।

सामान्य—वै सब किछु करता किछु नाहीं ।
जैसे चलै मेघ परछाहीं ॥ १-६

पाठान्तर—वह सब कुछु, कविता कुछु नाहीं ।
जैसे चलत मेघ परछाहीं ॥

सामान्य—कहौं सो ग्याँन ककहरा
सब आखर महँ लेखि ।
पंडित पढ़ अखरावटी
टूटा जोरेहु देखि ॥ १-८

पाठान्तर—कहा ग्यान ककहरा ।
सब आखर मन लेखि ॥
पंडित पढ़ अखरावती-
टूटा जोरेहु देखि ॥

सामान्य—पूर-पुरान पाप नहिं पुन्नू ।
गुपुत ते गुपुत सुन्न ते सुन्नू ॥ २-२

पाठान्तर—पूर, अपूर, न पाप न पुन्नू ।
गुपुत संकेत सुन्न अन सुन्नू ॥

सामान्य—अलख अकेल सबद नहिं भांती ।
सूरुज चाँद देवस नहिं राती ॥ २-३

पाठान्तर—अलख, अरुप, असब्द, अभांती ।
सुरुज, चंद नहिं देवस न राती ॥

सामान्य—किछु कहिये तौ किछु नहिं आखौं ।
पै किछु मुँह मँह किछु हिय राखौं ॥ २-५

पाठान्तर—कुछौ कही तौ कुछ नहिं अहा ।
पुनि कुछु माँह कुछुक होइ रहा ॥

सामान्य—आस न बास न मानुस अंडा ।
भये चौखंड जो अैस पखंडा ॥ २-७

पाठान्तर—अंस न, बंस न, मास न, अंडा ।
..................................॥

सामान्य—सरग न धरति न खंमभय,
बरम्ह न बिसुन महेस ।
बजर बीज बीरौं अस,
ओहि न रंग न भेस ॥ २-८

पाठान्तर—सरग न धरती अंथ ना,
ब्रह्मा, विसुन, महेस ।
बाछ बीज यक जामा,
तहवाँ रंग न भेस ॥

सामान्य—तेहि के प्रीति बीज अस जामा ।
भए दुइ त्रिरिछ सेत औ सामा ॥ ३-२

पाठान्तर—तिन्ह की प्रीति बीज अस जामा ।
भये दुइ बरन सेत औ स्यामा ॥

सामान्य—चलि सो लिखनी भइ दुइ फारा ।
बिरिछ एक, उपनी दुइ डारा ॥ ३-५

पाठान्तर—चली जो लेखनी होइ दुइ फारा ।
विरिछ एक उपनी दुइ डारा ॥

सामान्य—भेटिन्ह जाइ पुन्नि औ पापू ।
दुख औ सुख आनंद संतापू ॥ ३-६

पाठान्तर—मेटि न जाइ पुन्नि औ पापू ।
दुख-सुख आनंद औ संतापू ॥

१-१ सामान्य पाठ है—"आदिहु ते जो आदि गोसाईं" अर्थात् आदि से भी जो गोसाईं आदि का है। अर्थ शुद्ध है।

पाठान्तर का विवेचन

किन्तु विचार करने की बात है कि सुख के साथ दुख शब्द आता है। मिलन के साथ विरह आता है।

सुख और दुख, मिलन और विरह, आदि और अंत अलग-अलग नहीं, एक ही वस्तु के दो सिरे हैं। जब कवि आदि का प्रयोग करेगा तो स्वाभाविक है कि वह अन्त का भी प्रयोग करे। अतः "आदिहि-अन्त सो एक गोसाईं" अधिक शुद्ध प्रतीत होता है।

इसी प्रकार दूसरी अर्द्धाली में सामान्य पाठ है—"जेई सब खेल रचा दुनियाई" पाठ अशुद्ध है। 'खेल' रचा रहीं जाता, खेला जाता है। 'खेल करना' एक लोकोक्ति है जो वैसवारे में विशेष रूप से बोली जाती है। अतः 'रचा' के स्थान पर 'कीन्ह' शब्द अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

१-४ जौ वै आनि = जो बोइ आना।

दानों में सम रूपता है। अर्थ भी समान है। किन्तु इसी अर्द्धाली के आगे के शब्दों में पाठ भेद हो गया है। सामान्य पाठ है "जौ वै आनि जोति निरमई" अर्थात् जब उसने (ईश्वर) मुझमें लाकर ज्योति निर्मित की। इसके स्थान पर 'जो बोइ आना, तौ हौं आवा' अधिक न्याय संगत प्रतीत होता है। दूसरी अर्द्धाली में भी "दीन्हेसि ग्यान" शब्द है। 'जोति' और 'ज्ञान' का भाव एक ही है। अतः पुनरावृत्ति हो गई है। ग्यान पाकर 'गाने' का प्रसंग स्वाभाविक है।

१-६ वै सब किछु = वह सब कुछु।

किछु > कुछु = यहाँ स्थानीय बोली में 'कुछू' अथवा 'कछु' बोला जाता है। 'किछू' नहीं। जैसे—"कुछू नहीं ना" 'किछू' अथवा 'किछु' पूर्वी अवध के उन जिलों में बोला जाता है जहाँ से भोजपुरी प्रारम्भ होती है।

"करता > कविता"।

'करता' नहीं शब्द 'कविता' है। पंक्ति १-४ में आया है "मैं गावा" अतः "करता किछु नाही के स्थान पर "कविता कछु नाही" अधिक उपयुक्त है। सामान्य पाठ की दोनों अर्द्धालियों का एक दूसरी से सम्बन्ध

भी नहीं जुड़ता। "वै सब किछु, करता किछु नाहीं" की "जैसे चलै मेघ परछाहीं" उपमा से कोई सम्बन्ध नहीं है।

१-८ महँ > मन = "सब आखर महँ लेखि" 'आखर' और 'लेखि' के मध्य में 'महँ' शब्द है जो वास्तव में 'महँ' नहीं 'मन' है।

अखरावटी > अखरावती = 'अखरावती' शब्द अधिक शुद्ध है।

२-२ "पूर, पुरान, पाप नहिं पुन्नू"

'पूर' के साथ 'पुरान' का क्या तात्पर्य ? 'पाप' के साथ तो 'पुन्य' का संयोग ठीक है पर 'पूर्ण' (पूर) के साथ 'पुरान' की बात समझ में नहीं आती। वास्तव में पूर के साथ अपूर शब्द ठीक प्रतीत होता है। अतः "पूर पुरान, पाप नहि पुन्नू" के स्थान पर 'पूर-अपूर, पाप नहि पुन्नू" अधिक शुद्ध है।

इसी प्रकार २-३ में "अलख, अकेल, सबद नहि भाँती" के स्थान पर "अलख, अरूप अशब्द, अभांती" अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है।

२-५ में "...किछु नहिं आखौं" का क्या अर्थ ? क्या 'राखौं' का 'तुकान्त' मिलाने के लिये ही 'आखौं' शब्द आया है। वास्तव में— "कुछौ कही तौ कुछु नहिं अहा" अधिक स्वाभाविक एवं शुद्ध प्रतीत होता है।

२-७ में अर्द्धाली है—"आस न बास, न मानुस अंडा" इसका अर्थ है "आस नहीं, बास नहीं; मानुस नहीं, अंडा नहीं" मुझे कुछ ऐसा लगता है कि उर्दू अथवा फारसी लिपि के पठन-पाठन में यह विकृति आ गई है—

'अंस' को 'आस'
वंस को बास
मास को मानुस
अंडा = अंडा

पढ़ा गया है। इसका पाठ है—"अंस, न वंस, न मास न अंडा" और यह अपने आप शुद्ध प्रतीत होता है।

२-८ दोहा है "न वह सरग है, न धरती है, न खंभमय है, न ब्रह्मा है, न विष्नु है न महेश है। यहाँ 'खंभमय' के स्थान पर 'ग्रन्थ ना' पाठ अधिक शुद्ध प्रतीत होता है। इसी प्रकार "वजर बीज बीरों अस" के स्थान पर "बाछ बीज एक जामा" सामान्य पाठ है। क्योंकि "वीरों" अंस के स्थान पर "बीज यक जामा" अधिक शुद्ध है।

२-३ "दुइ विरिछ, सेत औ सामा" वृक्ष 'स्वेत और श्यामा' नहीं होते।

विरिछ > बरन।

"स्वेत और श्याम" वर्ण होते हैं। यह रंग हैं। वृक्ष नहीं। अतः "दुइ विरिछ सेत औ सामा" के स्थान पर "दुइ बरन सेत औ स्यामा" अधिक शुद्ध है।

३-५ "भइ दुइ फारा > होइ दोइ फारा।

दोनों पाठ शुद्ध हैं। किन्तु "लेखनी चली, दो फारा हो गई" के स्थान पर "लेखनी दो फारा होकर चली" अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है।

३-६ "भेटिन्ह जाइ = मेटि न जाइ।"

लगता है यह पढ़ने की अशुद्धि है। "मेटि न जाइ" को "भेटिन्ह जाइ" पढ़ लिया गया है।

इसी प्रकार अन्य बहुत से उदाहरण हैं किन्तु विस्तार भय से मैं इस प्रसंग को अधिक नहीं बढ़ाना चाहता। यह मेरा संकेत मात्र है। पद्मावत एवं अखरावट के सामान्य पाठों में अशुद्धता की ओर मैंने संकेत किया है। विद्वानों को यदि मेरे उक्त उद्धरणों में कुछ तथ्य प्रतीत हो तो वह गम्भीरता पूर्वक इस पर विचार कर सकते हैं। यों, जायसी के ग्रन्थों की प्राप्त पांडुलिपियों के आधार पर कोई गारंटी नहीं की जा सकती, जब तक जायसी की हस्तलिखित पांडुलिपि स्वयं न मिल जाय। फिर भी,

हमें इतना तो अवश्य ही देखना है कि अब तक प्राप्त पांडुलिपियों में कौन अधिक शुद्ध प्रतीत होती है। पांडुलिपि की प्रामाणिकता उसकी शुद्धता पर आधारित है, इसी आधार पर हम सामान्य पाठ निर्धारित कर सकते हैं। अशुद्धियों को शुद्ध करके पाठकों के समक्ष जायसी के ग्रन्थों का पूर्ण नहीं तो कम से कम सर्वाधिक शुद्ध पाठ प्रस्तुत कर सकते हैं। इसके लिये मैं जायसी साहित्य के अधिकृत विद्वानों को सादर आमंत्रित करता हूँ।

दो नवीन उपलब्धियाँ

महाकवि जायसी के ग्रन्थों की जो पांडुलिपियाँ मुझे प्राप्त हुई हैं उनमें उनके दो-नवीन-ग्रन्थों की उपलब्धि हुई है। वह ग्रन्थ हैं—'कहरानामा' एवं 'मसलानामा'। 'कहरानामा' का कुछ अंश 'महरी-बाइसी' के नाम से प्रकाश में आ चुका है। 'मसलानामा' अभी तक प्रकाश में नहीं आया था। कहरानामा के प्रत्येक पद अन्योक्तिमूलक हैं। 'कहार' को आधार मानकर जायसी ने उसकी 'वृत्ति' पर रुपक बाँधा है। कहार की वृत्ति है—मछली मारना, बाजा बजाना, नाचना-कूदना, डोली उठाना, कहारी करना आदि। कहार की इसी वृत्ति को जायसी ने अन्योक्ति के रूप में अपने दर्शन के अनुसार जीवात्मा पर घटित किया है। महरी बाइसी, कहार-नामा, कहरानामा एक ही ग्रन्थ के तीन नाम दे दिये गये हैं। वास्तव में 'कहरानामा' में २५ छंद हैं। यह वही छंद हैं जो 'महरी बाइसी' में हैं। लगता है किसी पांडुलिपि में 'बाइस' छंद प्राप्त होने से उसे 'कहरानामा' के स्थान पर 'महरी बाइसी' की संज्ञा दे दी गई है।

इसी प्रकार मसलानामा लोकोक्तियों का संग्रह मात्र है। दोहों एवं चौपाइयों में जायसी ने लोकोक्तियों का संकलन किया है।

कहरानामा

'कहरानामा' एवं 'महरी बाइसी' के छंदों को मिलाने से पता लगता है कि महरी बाइसी की प्रकाशित प्रति में बहुत-सी अशुद्ध शब्द अशुद्धियाँ तथा पाठ भेद है। अशुद्धियों की तालिका नीचे दी जाती हैं। यहाँ मैं केवल अशुद्ध शब्दों पर ही विचार करूँगा।

स्थल	सामान्य पाठ के शब्द	द्वि० पांडुलिपि के शब्द
१-१	विनति	मीत
,,	मैं किरति	हौं किरति
१-२	गयेव	कोऊ
,,	केवट को	केवट होइ
,,	चलावै	चलावत
,,	गहराई	कहराई
१-३	कोई	कोऊ
,,	गुन लाइ	गुन धारि
,,	पंथ सिर	सीस पथ
,,	चला	चलेऊ
१-४	तीर-नीर	तीर-तीर
,,	फल	भल
,,	पाँचइ	बांचइ
१-५	तरवारि	निरवारि
१-५	भाव भीर	भा धीमर
१-६	फंद	फांदि
१-६	तिरिस्ना	निरखि
१-७	ढूँढ़ि सिस्ट	ढूँढि सीप
१-९	औघंट	औगाह

१-१०	अवगाह	धाइ
१-११	तीर-तीर	पैरि तीर
१-१२	छोड़ि	छाँड़ि
,,	दिसउ गहिरे	बूड़ि अवगाहे
,,	गा हर दिसि	गा भरोस
,,	खाएँ रे	खाँगेउ रे
१-१३	पाव	पाँउ
,,	में	मँह
१-१४	तो	तौ

(२)

२-१	वार भए	वार बैठि
,,	तिहारै	निहारै
२-३	पावसि रे	आवसि रे
२-४	लहैं लोक	कहैं लोग
,,	मूरख आया	मुरुख अजाना
२-५	सांभर	संवल
,,	बुडहा भा	निदाह भा
२-६	चेति चलावै	जित चिल्लाइ
२-९	और अस्तुती	और जो निसठ
२-१०	रंचहु	अन चिन्ह
,,	रहा	रहेहु
२-१२	दरब हुतै	दरबहीन
२-१३	अइस	जस
	उतारा	निस्तारा
२-१४	बूड़हु	बुडिहहु

(३)

३-१	लाउ	नाउ
३-१	जेहि माहीं	जिउ नाहीं
३-२	झोंका	डोंगा
३-३	गुरु बोझ	गरु बोझ
३-४	फैंलब	पेलब
३ ६	वार	पार
३-७	कछू	कछुआ
,,	उठहीं	उलथहि
३-९	करिहा पोढ़	करिआ पौढि
३-११	तीर	नीर
३-१३	धुँध सवाई	धँध सवाई

(४)

४-७	खुटकार	छुटकार
४-८	गाठ	गाढे
४-९	घोर	खौरि
,,	भई	बहइ
,,	सूते	सोती
४-१०	सवार	सेवार
४-११	समुझौता	समुझावन

(५)

५-१	गहि की	गहिरे कै
,,	जो	जिउ
५-३	कौडिया	गोडिया
५-५	चांचरि	छाजै

५-६	चरत	चरित
५-१४	सौह	सुनहु

(६)

६-१	छनावै	छपावै
६-२	जो रै	चौरा
६-४	सैं गेहि	सजुगोये
६-५	जोट बड़े	छोट बड़ा
६-६	खुटकारी	कोठ वारी
६-७	पलना	पेलन
६-८	उलले	उथले
६-११	दहरी	डहरी

(७)

७-१	गहौ	कहेहु
७-११	सोंटिया	संवरिया
,,	सांति	सांटि
७-१४	कुडबा	कुरुबा

(८)

८-१	भल	सब
८-२	बहु रंग	तेहि रंग
८-४	सोहरे	ससुरे
८-७	बाद	नाच
८-८	बैना	बतियाँ
८-१०	उलहाना	उठौना
८-१२	गुनवर	कुँअर
८-१४	तब	तौं

(९)

९-२	चारि लै	चारिक
९-३	बटवा	पतवा
९-४	जगत	जनम
,,	आपुन	आपहिं
९-६	चीन्हे	चीन्हा
९-७	भइ	फिरि
९-७	उहाँ	उठत
९-१०	कहा कहिअ	कंत करत
९-११	बारा	बालक

(१०)

१०-१	अयानी	अप्रानी
१०-२	चलि	मिलि
,,	जब	चित
१०-३	घालै साथे	घैलन साथे
१०-६	जब छूटै	सुधि छूटै
१०-८	बरक्कत	परगट
१०-१०	अधारी	उतारै
१०-११	भई जनावनि	यहै चेतावन

(११)

११-१	खेवक	देवक
११-३	जिन	जित
११-६	जीव ओहि	जो ओहि
११-७	पुनि	बनि
११-८	टारि	मारि

(१२)

१२-२	इँगुर लावहु	भुअंग लजावहु
१२-३	करहु	देहु
१२-८	भीतर नाक	बेसरि नाक
१२-१०	रोमावलि	हारावलि

(१३)

१३-१	गै बरात	चलि बरात
१३-५	लाग	आइ
१३-६	धनि	धरि
,,	घूँघट	कौतुक
१३-७	बाउर	उतर
१३-१०	बोले	बूते
,,	बसाई	विसाइह
१३-१२	मनोरथ	मनोहर

(१४)

१४-१	निचिंत	अनुचित
,,	खटोलिन हारा	लेनिहारा
१४-७	डांड़ी	डंडिया
,,	आखै	भाखै
१४-८	सूख रस	सिंगासन
१४-९	करवत	करवँट

(१५)

१५-५	तर भूभुर	तरे कै भूभुरि
१५-८	धुँधरा	घूँधुर
१५-१२	फुनि	जिउ

(१६)

१६-६	झाँपैं	झाँपौं
१६-११	निरखन	निगुन
१६-१२	जो	जब
१६-१२	बैठे	भेंटब

(१७)

१७-१	सबहीं सेवा	सासुर सींवा
१७-४	पूजा-पाती	पूजन पाती
१७-७	अवधू अथिरे	डासन सथरी
१७-७	बुड्हू सतरे	ओढ़न कथरी
१७-८	उठाउब	जगाउब

(१८)

१८-१	जन दोइ	जन दुइ
१८-१	जोइ	भुँइ
१८-१	द्वार रे	देवा रे
१८-२	हथिवारन	वैसारिनि
१८-४	गहती	कीन्हेउ
१८-७	आगु-आगु	अगुआ
१८-७	पछुआ	पछुलगवा
१८-८	पेम	प्रेमा
१८-१०	विरसै	विलसै
१८-१३	समुझहु मूरुख	मूलमंत सोइ

(१९)

१९-१	फिरि आवा	डर खावा
१९-२	अगति मन	नाद मन

१९-२	जेहि	जीभ
१९-४	रिसाई रे	दूसर साईं रे
१९-५	वैठहु पुरुब कै	कैपीठि पुरुब दै
१९-५	निबहुर पच्छिम	मुँह रे पछिव
१९-७	पिउ	जेहि
१९-७	गुरु	गुन

(२०)

२०-१	भिनुसार	भिनुसहरा
२०-१	अधिकारा	जुरि सब महरा
२०-३	महुवर	महरि
२०-४	सोहावा	सोहावन
२०-४	मेहरिन गावा	अनहद गावन
२०-५	राती	आनी
२०-६	कियेउ	कहरा
२०-७	चहकारा	झाँझ नकारा

(२१)

२१-१	जोग चढ़ाइ	चौक पुराइ
२१-१	जो मुख	चौमुख
२१-३	पूरा सोहार	सोरह-सोरह
२१-३	वारी	पारी

(२२)

२२-१	दीन्ह	लीन्ह
२२-१	बसेर	बसेरा
२२-१	गाउँ	ठाउँ
२२-५	जोग	जेहि

२२-६	करि कुबेर	गिरि सुमेर
२२-१२	वस आपु	सो आपु

उक्त शाब्दिक अंतर से स्पष्ट हो जाता है कि जायसी की शब्दावली से अपरिचित होने के कारण संपादकों एवं प्रतिलिपिकारों ने इस प्रकार की भूलें की हैं। ग्रामीण-शब्दावली का पर्याप्त ज्ञान न होना भी इन भूलों में सहायक हुआ। पांडुलिपि-कर्त्ता जिन शब्दों को समझ नहीं पाये उन्हें अपने ढंग से बदलते गये। धीरे-धीरे शब्दों का रूप ही बदल गया। ऐसी स्थिति में—'चौमुख' का 'जो मुख', 'गा भरोस' का 'गाहर दिसि', 'धरि' का 'धनि,' 'ससुरे' का 'सोहरे', 'पतवा' का 'बटवा' तथा 'गिरि सुमेर' का 'करि कुबेर' हो जाना अस्वाभाविक नहीं है।

कहरानामा एवं महरी बाइसी में पाठान्तर

डा० माताप्रसाद जी गुप्त का कथन है कि—"जायसी के प्रतिलिपिकार और सम्पादक उत्तरोत्तर जायसी के समय की भाषा से दूर हटते आ रहे थे। इनमें से अनेक अवधी प्रदेश के भी नहीं थे। ऐसी दशा में जायसी की भाषा के विषय में इनसे भूलें होना स्वाभाविक था।"[1] डा० गुप्त जी का उक्त कथन अक्षरशः सत्य है। 'कहरानामा' एवं 'महरी बाइसी' के अनोखे पाठान्तर भी यही सिद्ध करते हैं। इन पाठान्तरों में व्याकरण संबंधी भूलें भी हैं। ग्रामीण शब्दों के स्थान पर गढ़े हुए जो शब्द रक्खे गये हैं, उन्होंने अर्थ का अनर्थ कर दिया है। इन पाठान्तरों का दोष मैं संपादकों को कम एवं प्रतिलिपिकारों को अधिक देता हूँ। संपादकों के संपादन का आधार अशुद्ध पांडुलिपियाँ हैं। उनमें जो शब्दावली उन्हें मिली, उसका ही उन्होंने संपादन किया। प्रतिलिपिकारों में सभी योग्य व्यक्ति नहीं थे, न सभी ऐसे थे जिन्हें ग्रामीण बोली का विशेष अथवा पूर्ण ज्ञान था। जायसी के ग्रन्थों की जो पांडुलिपियाँ

---

[1] जायसी ग्रंथावली, पृष्ठ ४०

प्राप्त हुई हैं, वे प्रायः बाहरी प्रदेशों में ही मिली हैं। भाषायें भी भिन्न-भिन्न हैं। कैथी, बंगाली एवं फ़ारसी भाषाओं में प्रायः अधिकांश पांडुलिपियाँ हैं। यदि कोई क्षेत्रीय व्यक्ति इन प्रतिलिपियों को लिखता तो उससे कम अशुद्धियाँ होने की संभावना थी। मैं अपनी द्वितीय पांडुलिपि को इसी कारण से अधिक शुद्ध मानता हूँ; क्योंकि इसका प्रतिलिपिकार जायस का ही पड़ोसी था। वह यहाँ की भाषा एवं ग्रामीण बोली के शब्दों से परिचित था। इसी आधार पर मैं 'कहरानामा' के कुछ पाठान्तर प्रस्तुत कर रहा हूँ।

सामान्य—गयेव केवट को नाव चलावै।
को लागेव गहराई रे॥ १-२

पाठान्तर—कोऊ केवट होइ नाव चलावत।
कोऊ लाग कहराई रे॥

सामान्य—दूरि गौन सांभर जहँ ताईं।
तू बुड्हा (?) भा डोलै रे॥ २-५

पाठान्तर—दूरि गवन, संबल जेहिं नाहीं।
अति निधाह भा डोलै रे॥

सामान्य—कहैं मुहम्मद पंथ न भूलउ।
आगे अइस उतारा रे॥ २-१३

पाठान्तर—कहैं महंमद पंथ न भूलौ।
आगे जस निस्तारा रे॥

सामान्य—उठहि पवन औ समुँद हिलोरै।
पवन बात खट डोलै रे॥ ३-५

पाठान्तर—उठैं भंवरु अरु लहरि हिलोरैं।
नाउ पात घत डोलै रे॥

सामान्य—धीमे चलहु धीर मन कीन्हें।
जस बक नाउँ उचारी रे॥ ४-१

पाठान्तर—धीमर धाइ परहु जनि गहिरे।
अइसे समुझि न पावहु रे॥
सामान्य—चढ़हिं तुरंगै तौ बौराई।
लीन्हें हाथ बचाखा रे॥ ५-२
पाठान्तर—चढे सार-गति नावरि खेवैं।
लीन्हे हाथ पचाखा रे॥
सामान्य—मछरी डारि मेलि पाले (पानी ?)
में देखै चरत अकेला रे॥ ५-६
पाठान्तर—मच्छरवार पसारि पानि महँ।
देखत चरित अकेला रे॥
सामान्य—सबहीं तारि रहा थिर अपुना।
सौह बोल बहु सांचो रे॥ ५-१४
पाठान्तर—जो लै आवा, सो हरि लइगा।
सुनहु बोल यह सांचा रे॥
सामान्य—गरुये ताप लाइ भुँइ जो रे (?)
संग औ मुकरी रे॥ ६-३
पाठान्तर—गरु ताप, चाल्हरि भुँइ दाबी।
कठिन 'सींगि' औ 'मंगुरी' रे॥
सामान्य—कहैं मुहम्मद तहाँ न पारै,
जहाँ न लहरि बडाई रे।
जहाँ मान आपन नहि देखै,
लाखन छाँड पराई रे॥
पाठान्तर—कहैं महंमद तहाँ न परिये,
जहाँ न लहुर-बडाई रे।
है कपरा झाँखर अरुझाना,
सकहु-त-चलौ छँड़ाई रे॥ ६=१३-१४

सामान्य—मनुवा मीत मिलाइ न छोडै ।
कामों (?) काहुँ न खोलिअ रे ।। ७-६
पाठान्तर—मन ते मीत मिताई न छोडै ।
कबौ गाँठि ना खोलै रे ।।
सामान्य—नाहिं तौ ठाकुर है अति दारुन ।
करहु चार कोइ चारी रे ।। ७-६
पाठान्तर—नाहित है ठाकुर बड दारुन ।
सुनि कै चारु कुचारी रे ।।
सामान्य—रहस कोउ सब महरी गावहिं ।
सब कर अइस बियाहू रे ।। ८-३
पाठान्तर—रहस कोउ महरी मिलि गावहिं ।
औ सब कहहिं बिआहू रे ।।
सामान्य—सखी सहेली, सुनहु सोहागिनि ।
सब कोऊ अइस बियाही रे ।। ६-१
पाठान्तर—सुनहु बात सब सखी संघातिनि ।
ब्याहचार सब काहू रे ।।
सामान्य—जनमत दुइ बटवा होइ जाहीं ।
अस चरित्र विधि खेला रे ।। ६-३
पाठान्तर—होतहिं दुइ पतवा तरु जामे ।
अइस चरित विधि खेला रे ।।
सामान्य—भै इस्तिरी-पुरुख दुइ हौं लै ।
ईसर गौरा सानेउ रे ।। ६-७
पाठान्तर—फिरि इस्तिरी-पुरुख भे दोऊ ।
ईश्वर गौरा साजे रे ।।
सामान्य—चले लखवती होइ दुइ भारा । ६-६
पाठान्तर—चली जो लिखनी होइ दुइ फारा ।

सामान्य—सुनि रे अयाने, होइ हुसियाले । १०-१
पाठान्तर—सुनहु अप्रानी, होहु स-प्रानी ।
सामान्य—बात सखी सों, मन गागरि सों ।
तेहि विधि चित्त न डोलै रे ।। १०-५
पाठान्तर—हित नागरि सों, चित गागरि सों ।
यहि बिधि सुधि नहि डोलै रे ।।
सामान्य—करनी के खेत न होइ बरक्कत ।
हसद न दीजै काहू रे ।। १०-८
पाठान्तर—करनी करु, घट परगट होई ।
भेद न दीजै काहू रे ।।
सामान्य—कोई यक टेकै अइस आइकै ।
अपने रंग कर राजा रे ।। ११-५
पाठान्तर—कोऊ प्रगटै कै आस अनेकन ।
अपने मन के राजा रे ।।
सामान्य—जीउ ओहि अस राज रजायसु । ११-६
पाठान्तर—जो ओहि आयसु, राजु रजायसु ।
सामान्य—चतुरि न चीर संवारहु रे । १२-१
पाठान्तर—चित्र विचित्र संवारहु रे ।।
सामान्य—कुँजर सिंघ सो गूँजै रे । १२-४
पाठान्तर—गूजरि सोभा गूँजै रे ।
सामान्य—भीतर नाक दिपै गज मोती । १२-८
पाठान्तर—बेसरि नाक दिपै गज मोती ।
सामान्य—काया साजि, मांजि कै दरपन । ११-१२
पाठान्तर—काया मांजि, साजि कै दरपन ।
सामान्य—धिक-धिक जीव चुराई हो । १३-२
पाठान्तर—धसकि-धसकि जिउ जाइहि रे ।।

सामान्य—लै चला मँदिर गोसाईं रे। १३-३

पाठान्तर—जब लगि मंदिर को आई रे।

सामान्य—जातिसु नगर ठौर है मुहमंद।
मनुवाँ सो नित जूझै रे॥ १३-११

पाठान्तर—जेहि सायर मां रहै मुहंमद।
मनुवां ते नित जूझै रे॥

सामान्य—अब नैहर तजि भईं पराई। १४-४

पाठान्तर—नैहर छाँडि, पराई जानी।

सामान्य—कहै मुहम्मद, सुदिन संवारहु। १४-११

पाठान्तर—कहैं मुहंमद सो दिन संवरहु।

सामान्य—खेत जाइ आगे भा घेरा। १५-१

पाठान्तर—कहत जाइ आगे भा कहरा।

सामान्य—कस अस जानि पसीजहु कछु।
कस ना छतरी जहँ ताईं रे॥ १५-७

पाठान्तर—जो अस जानि पंथ को बेवरा।
कस न छतुरिया छायहु रे॥

सामान्य—त्रिस्ना नगर नांघत दुख होई। १५-१०

पाठान्तर—नरि सांकरि नांघत दुख होई।

सामान्य—बारि बैसि कै खोट गहे लिहे। १६-२

पाठान्तर—बारि बयस गुन कुछौ न सीख्यो।

सामान्य—कंत पियारा हो कनहारा।
हौं धनि निरखन हारी रे॥ १६-११

पाठान्तर—कंत पियार, रूप गुन आगर।
हौ धनि निगुन अनारी रे॥

सामान्य—सबहीं सेवा, दुख मां जीवाँ। १७-१

पाठान्तर—सासुर सीवां, भा दुख जीवां।

सामान्य—घरी जस होई लाग तस··· ।
फिरि नहिं धंधा राखी रे ॥ १७-२
पाठान्तर—आहि रीति जसि, करहि लागि तसि ।
डांडी द्वारे राखी रे ॥
सामान्य—अवधू अथिरे, बूडहू सतरे ।
जौ लहि हो भिनुसारा रे ॥ १७-७
पाठान्तर—डासन संथरी, ओढ़न कथरी ।
जब लगि भयो भिनुसारा रे ॥
सामान्य—धरि हथि वारन, आवहि मारन । १८-२
पाठान्तर—धरि बैसारिन, औ मुँह मारिनि ।
सामान्य—को तोर आगु आगु तोर पछुआ ।
को आहै दिसि तोरी रे ॥ १८-७
पाठान्तर—को तोर अगुआ, को पछुलगवा ।
को सयान को बारी रे ॥
सामान्य—आए अन्हवारा जोरी रे । १८-८
पाठान्तर—आयहुँ दोऊ कर जोरे रे ।
सामान्य—हिय बहुमान केवट पुनि जागै ।
उहाँ चाह सब काहू रे ॥ १८-९
पाठान्तर—को कासों संग, मरन महाजन ।
चरौ-अचर सब काहू रे ॥
सामान्य—नातर एक कला उन ताहीं ।
मारि मारि जिउ लेहीं रे ॥ १८-१२
पाठान्तर—नत यह खेवना, तोर खेलउना ।
मारि मारि जिउ लेऊँ रे ॥
सामान्य—सोई सम्हारहु आपुहि तारहु । १८-१४
पाठान्तर—ताहि सँभारहु, आपुहिं तारहु ।

सामान्य—अस फिरि घाव अंगइत पावा ।
मूढ़ संवारहिं ठाऊँ रे ॥

पाठान्तर—अस डरु खावा, बकुरि न आवा । १६-१
गुरु संवरा तेहिं ठाऊँ रे ॥

सामान्य—सो सँवरत खिन, उठहि अगति मन ।
जेहि खोलै पिय नाऊँ रे ॥ १६-२

पाठान्तर—सो संवरत खन उठेउ नाद मन ।
जीभ खुली, पिय नाऊँ रे ॥

सामान्य—पिय मोर महरा, गुन मोर गहरा । १६-३

पाठान्तर—पिय मोर महरा, बहुगुन कहरा ।

सामान्य—सवति न दूसर, बाबुल ओसर । १६-१२

पाठान्तर—सौति जो दोसरि, पाऊँ न वोसरि ।

सामान्य—दुलह बोलावहु, चौक पुरावहु ।
ओ हँसि बोला महरा रे ॥ २०-२

पाठान्तर—सखी बोलावहु, चौक पुरावहु ।
बोलहिं, नाचहिं कहरा रे ॥

सामान्य—मंगल चारा, भा चहकारा ।
चले गरब सब केली रे ॥
..........................।
..........................॥[1] २०-७-८

पाठान्तर—मंगल चारा, झांझ नकारा ।
औ संग सजी सहेली रे ॥
जनु फुलवारी, फूली बारी ।
चली करत रस केली रे ॥

---

[1] प्रति में यह पंक्ति छूटी है ।

सामान्य—जोग चढ़ाइ काँप तब जोरै।
जो मुख दीपक बारे रे॥ २२-१

पाठान्तर—जाइ तुलाने, सो घर जाने।
जहँ हुत दुलहिन वारी रे॥

सामान्य—कहता पंडित, दुक्खदरद मंह।
मुरुख राज बड जावै रे॥ २२-६

पाठान्तर—कोविद-कविहि करत दरिद्री।
मूरुख राज रजावै रे॥

सामान्य—चंदन जहाँ नाग तहाँ बदि कै।
जहाँ फूल, तहँ काँटा रे॥ २२-७

पाठान्तर—चंदन जहाँ नाग तहँ राखिसि।
जहाँ फूल तहँ काँटा रे॥

सामान्य—कहैं मुहंमद जोरे भलो बड।
धनी गरब धरि चूरा रे॥ २२-११

पाठान्तर—कहै महंमद, जेहि रे कीन्ह बड।
तेहिक गर्व विधि तूरा रे॥

'महरी-बाइसी' एवं 'कहरानामा' के उक्त पाठान्तर से शुद्धता-अशुद्धता का निर्णय अपने आप हो जाता है। मेरे कहने का यह अर्थ नहीं कि पांडुलिपि द्वितीय का जो शुद्ध पाठ मैंने दिया है उसमें अशुद्धियाँ हैं ही नहीं। उसमें भी अशुद्धियाँ हैं। किन्तु 'महरी-बाइसी' से वह ६० प्रतिशत शुद्ध है।

'कहरानामा' को बलात् 'महरी-बाइसी' का नाम दे दिया गया है अथवा पांडुलिपि में 'महरी-बाइसी' ही लिखा था, इस विषय में मैं कुछ भी नहीं कह सकता। मुझे कुछ ऐसा लगता है कि विद्वानों को 'कहरानामा' के केवल 'बाइसी-छंद' प्राप्त हुए, अतः उन्होंने 'बाइस' की बायसी तैयार कर दी।

कहरानामा बनाम महरी-बाइसी

इस महरी-बाइसी की एक भी पंक्ति शुद्ध नहीं है। 'बाइसी' अपूर्ण भी है।[१] यही कारण है कि जायसी की इस अमूल्य कृति का सही मूल्यांकन नहीं हो पाया। सूफी संतों की मसनवी पद्धति में लिखी इस दार्शनिक कृति का महत्त्व अखरावट से कम नहीं है। जायसी का जीवन दर्शन इस कृति में जितने स्पष्ट रूप से उभरा है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। यह प्रबन्ध रूप में है और औपन्यासिक आनन्द अपने में आत्मसात् किये है।

'कहरानामा' के प्रत्येक पद अन्योक्ति-मूलक हैं। कहार को आधार मानकर उसकी वृत्ति का सम्बन्ध जीवात्मा से जोड़ा गया है। जीवात्मा एक दुलहिन है। कहार डोली में उठाकर उसे प्रियतम के पास ले जाते हैं। सम्पूर्ण कृति में २५ छंद है। प्रत्येक में १२ अथवा १४ पंक्तियाँ हैं, किन्तु अधिकांश पदों में १४ पंक्तियाँ हैं। इससे लगता है कि प्रत्येक पद में १४ पंक्तियाँ होनी चाहिये। हो सकता है पांडुलिपिकर्ता से कुछ पंक्तियाँ छूट गई हों। कथासूत्र भिन्न होते हुए भी एक क्रम से चलता है। अंतिम पद में जायसी ने अपने जीवन दर्शन का निचोड़ रख दिया है। पचीसों छन्द का संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है।

कहरानामा के पद

१—प्रथम पद में जायसी ने 'महरा' अथवा 'कहार' के दो रूपों का वर्णन किया है। एक केवट होकर नाव चलाने का, दूसरा 'कहराई' करने का। शीश पर रस्सी बाँध कर नाव ठेलने तथा जाल लगा कर मछली पकड़ने, न मिलने पर पश्चात्ताप करने का वर्णन है।

---

[१] छन्द ७ में चौथी पंक्ति नहीं है। छन्द १७ मे शब्द छूटा है। छन्द २० में शब्द छूटा है तथा आठवीं पंक्ति नहीं है।

२—इस पद में १४ पंक्तियाँ हैं। एक व्यक्ति जो पार उतरना चाहता है वह केवट को पुकार रहा है। तट पर बैठा है, बाँह उठा-उठा कर चिल्ला रहा है। उसे 'दूर' जाना है, उसके पास कोई सहारा नहीं है। लोग उसे मूर्ख कह रहे हैं, वह पश्चात्ताप कर रहा है कि उसने अभी तक पार उतारने वाले केवट से चिन्हारी क्यों नहीं की। भाई-बन्धु, मित्र कोई उसका साथ नहीं दे रहा है।

३—तीसरे पद में वह नाव पर चढ़ता है। उसकी आत्मा डोल रही है। भादों की नदी हाहाकार करती बह रही है। भँवरें उठ रही हैं, नाव पत्ते की तरह काँप रही है। कछुआ, सूँस, घड़ियाल, दिखाई पड़ रहे हैं। साँप फुफकार रहे हैं। वह खेने वाले से विनती कर रहा है कि "चित देकर नाव खेओ" जब नाव उस पार लगेगी तभी पेट में 'जिउ' आवेगा।

४—इस पद में नाविक के मछली मारने का दृश्य है। उसे सावधान किया गया है। पता नहीं उसके जाल में घोंघी, सेवार निकले या वह सीप-मोती पा जाय।

५—इस पद में भी गहराई में मछली मारने का दृश्य है। वह पानी में जाल फैलाकर देख रहा है। जाल की गाँठें जोड़ता है, उलझन को सुलझाता है। इस प्रकार वह सब जीवों को फँसा रहा है। यहाँ उसकी उपमा 'काल अहेरी' से दी गई है।

६—इस पद में मछली प्राप्त होने का दृश्य है। कोई उन्हें छिपा रहा है, कोई खींच रहा है। कवि सतर्क कर रहा है कि ताप में सँभल कर हाथ डालो अन्यथा 'मंग्ुरी' मछली डंक मार देगी। वह जाल बाहर घसीट लाता है। सब लोग मछलियाँ बीन रहे हैं। जिसके पास "जाल-ताप" (मछली मारने के उपादान) कुछ भी नहीं हैं वह बेचारा किनारे-किनारे, उथले जल में मछलियाँ पकड़ रहा है।

७—इस पद में रात-दिन मछली मारने का वर्णन है। डोंगा (छोटी नाव) पर चढ़कर कहार मछली मारता है। नहीं पाता है तो पछताता है। कवि का कहना है कि यदि मछली चाहते हो तो लँगोटा बाँधकर, लाज-शर्म सब छोड़ दो, 'गहिरे' में कूद पड़ो।

८—इस पद में इन्द्रिय-जनित भोगों को ईश्वर का भय दिखाया गया है।

९—इस पद में कहारों के मदिरा-पान का दृश्य है। कहार-कहारिन मदिरा पीते हैं। नशे में उन्मत्त हो जाते हैं। कोई रोता है, कोई हँसता है, कोई गा रहा है। कवि उस 'भट्ठी' को, मदिरा को, सड़ायँद को, मदिरा की दूकान को तथा मदिरा बेचने वाली 'कलवारिन' को धन्यवाद देता है। क्योंकि उसने उन्मत्त कर देने वाली कितनी अमूल्य वस्तु की सृष्टि की है।

१०—इस पद में एक नयी-नवेली दुलहिन का वर्णन है। ब्याह हो रहा है, महरा-महरी नाच रहे हैं, दुलहिन पश्चात्ताप कर रही है। बारात आ गई है, दुलहिन दुखी स्वर में अपनी सखी से कह रही है— "मैं पिया की संवरी सेज पर कैसे जाऊँगी। मेरी आत्मा डोल उठेगी। रात-दिन घूँघट काढ़ना पड़ेगा। 'सास-ससुर' के आगे कैसे निकलूँगी।

११—इस पद में सखी कहती है, "दुनियाँ में सब का व्याह होता है। नैहर में चार-दिन ही रहना पड़ता है। जीवन तो ससुराल में ही बीतता है। ईश्वर ने अंकुर फूटते ही दो पत्तों को जन्म दिया। वह स्वयं तो अकेला रहा मगर दो का जोड़ा बना दिया।" 'दो' शब्द की उपमाएँ अद्वितीय है।

१२—यहाँ पनघट का दृश्य है। पति विदा कराने आया है। डोली-कहार भी साथ लाया है। वह अपने पति को देख लेती है, ध्यान मग्न हो जाती है।

१३ पति के देवता रूप का वर्णन है।

१४—इस पद में विदा के समय की तैयारी का वर्णन है। दुलहिन की माँग भरी जाती है। केशों की वेणी गूँथी जाती है, सिंदूर लगाया जाता है। आँखों में अंजन, कलाइयों में कंगन, नाक में बेसर, पैरों में पायजेब, चौरासी, पायल हैं। सभी अलंकारों से दुलहिन अलंकृत की जाती है।

१५—बारात निकट आ गई है। बाजे बज रहे हैं। दुलहिन परेशान है। वह विवश होकर अपनी सखियों से कह रही है—"तुम सब खड़ी-खड़ी तमाशा देखोगी और मैं अकेली ही पकड़ जाऊँगी। कोई मेरी सहायता न करेगा।"

१६—विदा की बेला आ गई है। दुलहिन सबसे बिछुड़ रही है। भाई-बन्धु, कुटुम्ब सब छूट रहा है। कहारों ने डोली तैयार कर ली है। दुलहिन डोली के सँकरे खटोला में बैठ गई है। मार्ग बहुत लम्बा है। डोली का बाँस रह-रह कर शीश से टकरा रहा है।

१७—कहार डोली को 'प्रियतम के देश' की ओर लिये जा रहे हैं। कभी-कभी वह डोली के बाँस में 'बल्ली' की टेक लगाकर खड़े हो जाते हैं, सुस्ताते हैं। अँधेरा रास्ता है, कभी ऊपर घाम है, कभी नीचे 'भुलभुल', डोली कसमसा रही है। दुलहिन घबड़ाकर अपने मन में सोचती है कि—"यदि इन लोगों को रास्ते की इतनी जानकारी थी तो—"कस न छतुरिया लायो रे।" आगे, कुछ दूरी पर 'पिया का गाँव' 'धूम्र वरन' दिखाई पड़ रहा है। दुलहिन बैठी सोच रही है।

१८—आगे अगम थाह है। नदी बह रही है। कहार पार नहीं जा सकते। रास्ते में चोर-बटमार लग रहे हैं। दुलहिन की आयु कच्ची है, वह घबड़ा रही है। डोली प्रियतम के यहाँ पहुँचती है। महरा-महरी नाच रहे हैं, बाजे बजा रहे हैं। दुलहिन बार-बार काँप उठती है, मुख

ढाँपती है। वहाँ उसका कोई 'अपना' नहीं है। वह प्रियतम से मिलने को आकुल है।

१६—ससुराल में सास, ननद सब उसके पास रहती हैं। बाद में वही उस पर व्यंग्याघात करती हैं। उसे एक बन्द कोठरी (कोहबर) में बठा देती हैं। वहाँ बिछाने को 'सथरी' है, ओढ़ने को 'कथरी' है। किवार बन्द हो जाते हैं। वह प्रियतम से मिलने को लालायित है।

२०—कुछ व्यक्ति आ जाते हैं। प्रियतम का नाम पूछते हैं।

२१—प्रियतम उसका 'महरा' है। बहुत से गुणों वाला 'कहरा' है। वह डर गई है क्योंकि वह स्वयं 'निरगुन' है। बोल नहीं फूटते। वह इस कठिन बेला में अपने गुरु का स्मरण करती है, पतिव्रता होने का प्रण करती है। 'एक' प्रियतम की पूजा चाहती है दूसरा नहीं चाहती। जब 'एक' से उसका चित्त बँध गया तब यह 'द्वैतवाद' क्या ?

२२—सबेरा हो जाता है। सखियाँ आती हैं। चौक पूरी जाती है। कहारों का झुण्ड इकट्ठा होता है। नाच-गाना होता है। भाँति-भाँति के बाजों पर 'अनहद' शब्द सुनाई पड़ता है। सभी 'महरी' नाच रही हैं, गीत गा रही हैं, आनन्द मनाया जा रहा है। वास्तव में यह संसार एक 'मुँदरी' है, प्रियतम उस 'मुँदरी' का 'नग' है।

२३—देवी-देवता मनाये जा रहे हैं। माथे पर अक्षत लगाया जाता है। दुलहिन की गाँठ जोड़ी जाती है। रात में पति-पत्नी "चौसर" खेलते हैं। पति जीत जाता है। पत्नी हार जाती है।

२४—दुलहिन का इस प्रकार आना-जाना लगा रहता है। कभी नैहर, कभी ससुराल। भँवरों ने शरीर का रस पी डाला है। फूल में अब गंध नहीं रह गई। यह ईश्वर की लीला है। ईश्वर बड़े-बड़े कवियों, कोविदों को दरिद्री बना देता है, मूर्खों को राजा कर देता है। वह किसका गर्व नहीं तोड़ता ?

२५—अन्त में जायसी ने 'कहरानामा' का निचोड़ दिया है। वह कहते हैं—"मैंने जो यह 'कहरानामा' कहा है, उसमें संसार का स्वार्थ है। इसके पढ़ने, सुनने, समझने, समझाने से परमार्थ सुफल होता है। वेद, पुराण, गीता, भागवत, तंत्र-मंत्र सब व्यर्थ हैं। 'इश्क का पथ' ही सार है। इसी से मैंने 'इश्क के पंथ' को स्वीकार किया है। जो मेरे पास आया मैंने उसे इश्क की ही शिक्षा दी। जप, तप, व्रत, पूजा-पाठ, तीरथ, संध्या सब कुछ करके छोड़ दिया है। जब इस संध्या-उपासना का कुछ भी परिणाम नहीं निकला तब 'इश्क' का पथ अपनाया। उसी में मन लगाया।"

इस प्रकार सम्पूर्ण 'कहरानामा' सूफी सन्तों की 'प्रेम-साधना' का प्रतीक बनकर अन्योक्ति के रूप में जायसी के 'जीवन-दर्शन' का साक्षात्कार करा देता है। इस ग्रन्थ की अभिव्यक्ति, भाषा, शैली, प्रवाह एवं छन्द-योजना उच्चकोटि की है। सबसे विशेष बात तो यह है कि जायसी ने इसमें 'दोहों-चौपाइयों' को छोड़कर एक नयी छन्द-योजना की सृष्टि की है।

महाकवि जायसी 'मौलिक छंद-योजना' के स्रष्टा थे। जिस प्रकार उनके पद्मावत की दोहों-चौपाइयों के आधार पर गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस का प्रणयन किया उसी प्रकार उनके अन्य छन्द भी समकालीन एवं परवर्ती कवियों द्वारा अपनाये गये। 'कहरानामा' के नामकरण एवं छन्द-योजना से प्रभावित होकर अनेक कवियों ने ककहरा-नामा' नामक ग्रन्थ लिखे। इस क्षेत्र में, विशेषकर जायस के आस-पास बहुत से 'ककहरानामा' लिखे गये। इनमें श्री नेवलदास जी का 'ककहरानामा' बहुत ही महत्त्वपूर्ण कृति है। उसकी पांडुलिपि का कुछ अंश यों है—

कहरानामा की परम्परा

प्रभु साहेब जग जीवन स्वामी भौन-भौन विश्रामा रे !
दास नेवल तिन्हकर यक चेला गावत ककहरानामा रे !
पहिले जोति-जोति ते निर्गुन तौ फिर सुन्न समाहीं रे !
दास नेवल तेहि सुन्नहि मिलिगे फिर नहिं आवहिं जाहीं रे !

इसी प्रकार अन्य सन्त कवियों ने भी जायसी के 'कहरानामा' से प्रभावित होकर उसी छन्द में अपनी पुस्तकों की रचना की।

कहरानामा के संस्करण

पांडुलिपि सं० प्रथम व द्वितीय के अतिरिक्त 'कहरानामा' के दो संस्करण मुझे देखने को मिले हैं। इन दोनों संस्करणों का नाम 'महरी-बाइसी' है। प्रथम संस्करण डॉ० माताप्रसाद जी गुप्त की 'जायसी ग्रन्थावली' में है। द्वितीय डॉ० मनमोहन गौतम द्वारा सम्पादित ग्रन्थावली में भी उसी नाम से है। 'महरी-बाइसी' की प्रति डॉ० गुप्त जी को कॉमन वेल्थ रिलेशन्स ऑफिस, लंदन से प्राप्त हुई है। डॉ० गौतम जी की महरी-बाइसी सम्भवतः इसी की कापी है। उक्त दोनों संस्करण एक ही हैं। दोनों का पाठ समान है। इनमें कुछ पंक्तियाँ छूट भी गई हैं। जिनका निर्देश पुस्तक में है। छूटी हुई पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

पद ७ की चौथी पंक्ति जो छूट गई है वह यह है—

प्रेम राज जो करहु पियारी
साथी पाँच संभारेहु रे।

वास्तव में यह तीसरी पंक्ति है। उक्त संस्करणों में जो तीसरी पंक्ति दिखाई गई है, वह चौथी है।

पद १७ पंक्ति—२ में जो शब्द छूटा है, वह यह है—

सबहीं सेवा……साखीरै
घरी जस होई, लाग तस …।
फिरि नहिं धंधा राखी रे

पंक्ति २ में 'तस' के बाद शब्द छूटा बताया गया है। इस पंक्ति का शुद्ध पाठ है—

सासुर सीवाँ, भा दुखी जीवाँ
कोऊ न कहै असाखी रे!
आहि रीति जसि, करहि लागि तसि
डाँडी द्वारे राखी रे!

अतः 'घरी जस होई' के पश्चात् 'लाग करहि तस' होना चाहिये। 'करहि' शब्द छूट गया है।

पद २० में ८वीं पंक्ति एवं प्रथम पंक्ति का एक शब्द छूटा हुआ दिखाया गया है। आठवीं पंक्ति जो छूटी है वह यह है—

मंगल चारा, झाँझ नकारा
औ संग सजी सहेली रे!
जनु फुलवारी, फूली बारी
चली करत रस केली रे!

किन्तु उक्त पंक्ति में 'रसकेली रे' पहले आ गया है जो नीचे होना चाहिये। 'सहेली रे' ऊपर। इसी प्रकार प्रथम पंक्ति में—"भा भिनुसार, अधिकारा होतहिं······"के बाद छूटा हुआ शब्द दिखाया गया है। इसका शुद्ध पाठ यह है--

भा भिनुसहरा, जुरि सब महरा
होतहिं पाछिल पहरा रे!

उक्त दोनों संस्करण अपनी पांडुलिपि के अनुसार पूर्ण ही हैं। इस विषय में मुझे अधिक कुछ नहीं कहना है। नाम चाहे 'महरी-बाइसी' हो अथवा 'कहरानामा' दोनों के पाठ का शुद्धीकरण अपेक्षित है। इसमें कोई

सन्देह नहीं कि 'कहरानामा' का पाठ 'महरी-बाइसी' के पाठ की अपेक्षा अधिक शुद्ध है। जो स्थल इस 'कहरानामा' में बढ़ कर २२ की अपेक्षा २५ हो गये हैं, वह अपने आप स्पष्ट हैं। उन्हें बताने की आवश्यकता नहीं है।

मसलानामा

'मसलानामा' जायसी की अत्यन्त छोटी कृति है। यह लोकोक्तियों का संग्रह-मात्र है। प्रथम तथा द्वितीय, दोनों पांडुलिपियों में 'मसलानामा' संगृहीत है। इन दोनों पांडुलिपियों के अतिरिक्त 'मसलानामा' मुझे अन्यत्र कहीं भी देखने को नहीं मिला। आज तक यह कृति प्रकाश में ही नहीं आ सकी, ऐसी स्थिति में इसके देखने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। सर्वप्रथम जायसी के इस नवीन ग्रन्थ के दर्शन मुझे प्रथम पांडुलिपि में हुए तत्पश्चात् द्वितीय में। इस नवीन उपलब्धि का समाचार जब समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ तो अनेक विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ। डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होंने पत्र लिखकर इसकी जानकारी प्राप्त की। बाद में उन्होंने अपने एक अंग्रेज मित्र को इसकी सूचना इंगलैंड भेजी, जिसका विवरण 'एक हिन्दी प्रेमी अंग्रेज का पत्र' शीर्षक से 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में प्रकाशित हुआ। हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद ने अपनी पत्रिका 'हिन्दुस्तानी' के भाग २१ : अंक २ अप्रैल-जून १९६० में 'मसलानामा' का पाठ प्रकाशित किया। तब से आज तक यह ग्रन्थ चर्चा का विषय है।

'मसलानामा' जैसा कि मैंने बताया, जायसी की अत्यन्त छोटी कृति है। सम्पूर्ण पुस्तक में १२ दोहे तथा ५९ चौपाइयाँ हैं। पाँच चौपाइयों के पश्चात् एक दोहे का क्रम है, छठे दोहे के पश्चात् केवल चार अर्द्धालियों पर ही दोहा आ गया है, अतः ऐसा प्रतीत होता है कि इस कडबक की एक अर्द्धाली छूटी हुई है। मसलानामा की प्रत्येक अर्द्धाली में एक लोकोक्ति है। लोकोक्तियाँ प्रायः अवधी की हैं। लोकोक्तियों का प्रयोग

महाकवि जायसी ने अपने जीवन-दर्शन के अनुसार किया है। लोक-साहित्य संकलन की दिशा में यह प्रथम कृति है।

लोक-साहित्य

लोक जीवन की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, जिस मार्मिक अनुभवों की रसधार में आज युग-युगान्तरों से आप्लावित है, उसे हम लोक-साहित्य की संज्ञा दे सकते हैं। अनन्त वैचित्र्य से परिपूरित यह साहित्य अपने में जो अमरता का रहस्य छिपाये है, उसकी भाव-प्रवण आत्मीयता का श्रेय कुछ अज्ञात कलाकारों को है। शाश्वत माधुर्य में चिरंतन आत्मीयता छिपाकर प्राण-रस बरसाने वाले लोक-साहित्य को हम तीन-भागों में विभाजित कर सकते हैं—

१—लोक-कथा
२—लोकगीत
३—लोकोक्ति

'लोक-कथा' तथा 'लोक-गीत' पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। लोकोक्तियों के संकलन भी प्रकाशित हो चुके हैं।

लोकोक्ति

लोकोक्ति शब्द का अर्थ है लोक-उक्ति। अवधी में इसे 'कहमूति' कहते हैं। अब 'मसल' अथवा 'मसला' शब्द भी जन-भाषा के शब्द होकर ग्रामीण क्षेत्रों में व्यवहृत होते हैं। वास्तव में लक्षणा या व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य या प्रयोग जो किसी एक ही बोली या लिखी जाने वाली भाषा में प्रचलित हो और जिसका अर्थ प्रत्यक्ष अभिधेय अर्थ से विलक्षण हो, उस शब्द योजना को हम लोकोक्ति कहते हैं। संसार की प्रायः सभी जीवित भाषाओं में लोकोक्तियों का प्रयोग होता है। इन लोकोक्तियों के प्रचलन का समय अथवा काल-निर्धारित नहीं किया जा सकता। प्रत्येक लोकोक्ति का लाक्षणिक अर्थ होने से ऐसा प्रतीत होता है कि इनके पीछे

कोई-न-कोई घटना अवश्य छिपी है। किसी विशेष घटना के घटित होने पर उस समय जो 'विलक्षण तथ्य' निकाला गया, वह लोकोक्ति बन गया।

देववाणी संस्कृत के ग्रन्थों में भी लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है। 'हीरे खरल में कूटे जाते हैं' यह एक लोकोक्ति है। दृष्टान्तशतक में इसी को—'मणिरेव महाशाणा घर्षणं न तु मृत्कणः।'

अन्य भाषाओं में लोकोक्तियाँ

"जल में रहे मगर से बैर" यह भी एक लोकोक्ति है। मुद्राराक्षस में इसका प्रयोग इस प्रकार हुआ है— "कीदृशः पुनः तृणनामाग्निना सह विरोधः" भला कहीं तिनके आग का विरोध कर सकते हैं। इसी प्रकार अभिज्ञान शाकुन्तलम् तथा नीतिशतकम् में भी लोकोक्तियाँ पाई जाती हैं।

संस्कृत के अतिरिक्त अन्य विदेशी भाषाओं में भी लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है। अंग्रेजी, अरबी, फ़ारसी की बहुत-सी लोकोक्तियों का प्रयोग भी हम किया करते हैं। शब्दावली अवश्य परिवर्तित है किन्तु भाव एक सा ही है। लोकोक्ति है—'शेर का बच्चा शेर ही होता है' अथवा 'तीतर के बच्चे को दहाई नहीं सिखाई जाती' यह हमारे यहाँ की ग्रामीण लोकोक्तियाँ हैं। फारसी में इसी को इस प्रकार कहा जाता है— "गुर्ग ज्यादा गुर्ग शबद" अर्थात् भेड़िये का बच्चा भेड़िया ही होता है।

लोगों का अनुमान है कि सूफी-सम्प्रदाय भारत में मुसलमानों के आक्रमण के पूर्व ही प्रवेश पा चुका था। अरब-निवासी व्यापारियों के साथ-साथ कभी-कभी कुछ सूफी फ़कीर भी आ जाते थे।

मसला

दक्षिण भारत एवं सिन्ध में वे अपने मत का प्रचार करते थे। हो सकता है 'मसला' शब्द उन्हीं सूफी सन्तों की देन हो। क्योंकि इसके पूर्व 'मसला' नाम की कोई वस्तु हमारे देश में नहीं थी। यह शब्द 'मिस्ल' से बना है। मिस्ल का अर्थ है—भांति, तरह। यह अरबी भाषा का शब्द है जिससे अन्य शब्दों की व्युत्पत्ति हुई।

मिस्ल > मसलन > मिसाल > मसल > मसला

'मिस्ल' शब्द से निकला हुआ 'मसल' शब्द बाद में 'मसला' बन गया। जिसका अर्थ है—लोकोक्ति। यह संज्ञा पुंल्लिग में प्रयोग होता है। 'मसल' शब्द, जो 'मसला' के समान ही अर्थ रखता है, मसला की तरह सं० पुंल्लिग न होकर, संज्ञा स्त्रीलिंग है। सूफी सन्तों द्वारा लाया गया यह शब्द धीरे-धीरे व्यापक होता गया, बाद में जन-जीवन का एक अंग बन गया। जायसी ने अपनी कृति का नामकरण इसी आधार पर 'मसलानामा' किया।

जायसीकृत मसलानामा

मलिक मुहम्मद जायसी कृत मसलानामा लोकोक्तियों की एक अनूठी पुस्तक है। जायसी के जिन २० ग्रन्थों की चर्चा हिन्दी जगत् में है, उनमें 'मसलानामा' का उल्लेख नहीं है। हो सकता है इस पुस्तक की जानकारी लोगों को न हो पाई हो। 'नामा' शब्द की परम्परा जायसी की अपनी देन है। उनकी अधिकांश पुस्तकों के अन्त में 'नामा' शब्द लगता है। यथा—'पोस्तीनामा', कहरानामा, मुकहरानामा, मुराईनामा, मेखरावट-नामा आदि की भाँति 'मसलानामा' भी उनकी एक कृति है। यह दोहों एवं चौपाइयों में लिखी गई है। प्रत्येक अर्द्धाली अथवा दोहे के अन्त में एक 'मसला' है। मसलानामा पुस्तक जायसी की मसनवी पद्धति के अनुसार ही लिखी गई है। इन 'मसलों में भी स्थान-स्थान पर उनकी प्रेम की-पीर उभरी है। यह कृति पद्मावत के बाद की रचना है अथवा पूर्व की, इस विषय में काफी मतभेद हो सकता है। क्योंकि पद्मावत की भाँति इसमें रचना-काल अथवा तत्कालीन किसी बादशाह की वन्दना नहीं की गई। मेरा अपना विश्वास है कि यह जायसी के सन्त-जीवन के प्रारम्भिक दिनों की कृति है। पहले वह इसी प्रकार की उपदेशात्मक छोटी-छोटी कृतियों का प्रणयन करते रहे होंगे। 'पद्मावत' तो उनकी प्रौढ़-अवस्था की कृति है। फिर भी इस 'मसलानामा' की छाया 'पद्मावत'

'अखरावट' एवं 'आखिरी कलाम' पर पड़ गई है। पद्मावत में तो स्थान-स्थान पर मुहाविरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग सुन्दरता के साथ किया गया है। कुछ उदाहरण निम्नांकित हैं—

"दिन दुइ-चारि मरँ करि धन्धा"

—पद्मावत, स्तुतिखण्ड

× × ×

भाइन्ह मांह होइ जिनि फूटी।
घर के भेद लंक अस टूटी॥

—रत्नसेन, विदाई-खण्ड

× × ×

जौं लगि मथै न कोइ दइ जीऊ।
सूधी अंगुरी न निकसै घीऊ॥

—लक्ष्मी, समुद्र-खण्ड

'अखरावट' तथा 'आखिरी कलाम में भी इनका यत्र-तत्र प्रयोग है—

"मरम नैन कर अंधरै सूझा"

× × ×

"मरम स्रवन कै बहिरै जाना"

—आखिरी-कलाम

"कंत मिलै जो खेलै फागू"

—अखरावट

इसी प्रकार उक्त पुस्तकों में और बहुत-सी लोकोक्तियाँ हैं जिनका विस्तृत विवेचन यहाँ पर अपेक्षित नहीं है।

'मसलानामा' महाकवि जायसी की एक अत्यन्त छोटी-सी कृति है।

इस लघु-कृति में भी हमें ऐसा लगता है कि कवि अपने इन 'मसलों' के माध्यम से आध्यात्मिक तथ्यों का निरूपण करता चलता है। सूफी-मत के अनुसार संसार की असारता, अस्थिरता, एवं असत्यता का दिग्दर्शन भी हमें इसमें मिलता है। जीव को 'साईं' से नेह लगाने का उपदेश भी है तथा 'रूप' की खोज भी। इस पुस्तक की सम्पूर्ण लोकोक्तियों का ढाँचा सूफी-मत की प्रेम-साधना के तत्त्वों पर खड़ा है। ईश्वर, सौन्दर्य एवं प्रेम दोनों रूपों में दिखाई पड़ता है। उस रूप के प्रति एक प्यास है, तड़पन है, और है खोज! साथ-ही-साथ लोकोक्तियों का प्रयोग भी—

मसलानामा के मसले

निहचै तोर रूप मैं हेरा।
आवइ आव कि जाइअ बेरा।

× × ×

पढ़े बहुत पै नेह न जाना।
सौ गुलाम सूना खरिहाना॥
जो हम कंत पियारा पाई।
तौ हम मुसरन ढोल बजाई॥

और भी ऐसी ही पंक्तियाँ हैं जिनमें जायसी की पीर उभर आई है। संसार की असारता पर भी वे स्थल-स्थल पर संकेत करते चलते हैं।

जीवन थोड़ बहुत उपहासा,
अँधरी कुकुरी पीठ बताशा॥

× × ×

करि ले आजु अहै जो करना,
धंध छाँडि आखिर है मरना।

× × ×

धंध पोथ जाइय नहिं साथ,
बगुला मारे पखना हाथ।

लोभ, तृष्णा, क्रोध तथा मूर्ति-पूजा के विषय में भी स्थान-स्थान पर संकेत हैं। साथ-ही-साथ 'जीव' को उपदेश भी :—

जीव न गर्वन भूलेसि, नेह-नाह को राख।
चार दिना की चाँदनी, फिरि अँधियारा पाख॥

× × ×

देवस गँवायो बाढि सब, साँझ चले उठि बाट।
जैसे कुत्ता धोबि को, भयो न घर को घाट॥

समाज पर कहीं-कहीं मसलों के साथ जायसी ने व्यंग्यात्मक छींटेकसी भी की है।

पाथर काटि कै दैवत साजा,
अंधरेन माँ जस कनवै राजा।

× × ×

कहे जाहु जो कछु मन-माहीं,
जीभ के आगे बंधक नाहीं।

प्रेम-रूपी ईश्वर को वही जान सकता है जिसमें विद्या हो, बुद्धि हो और जो अपने को साईं के चरणों में बलिहार कर सके। यदि कोई बहुत ही बुद्धिमान् है, विद्वान् है और उसका 'अहंभाव' जागृत है तो वह अपने प्रियतम को नहीं पा सकता। इस 'अहंभाव' की तुलना जायसी ने उस 'तरुणी-सास' से की है जो स्वयं अपने ही बनाव-शृङ्गार में डूबी रहती है, बहू बेचारी को अवसर ही नहीं देती। 'बहू' वह जीवात्मा है जो अपने प्रियतम से मिलना चाहती है किन्तु 'अहं' रूपी सास अपनी पूरी जवानी पर होने के कारण बहू की इच्छाओं पर पानी फेर देती है, वह उसके पथ का रोड़ा बन जाती है। जायसी ने इसी बात का निर्वाह कितने सुन्दर ढंग से इस लोकोक्ति में किया है :—

बुद्धि-विद्या के कटक मों,
है 'मैं' का विस्तार।
जेहि घर सास तरुनिया,
बहुआ कौन सिंगार!

विधि का विधान अमिट है, उसे बदला नहीं जा सकता। जो होना है, वह अवश्य होगा, कोई उसे रोक नहीं सकता। भले ही हम उसे रोकने के सहस्रों प्रयत्न करें, पर वह रुकने वाला नहीं। निम्नांकित लोकोक्ति में यही भाव बहुत ही स्पष्ट रूप में आया है :—

होनहार सो होइ है,
बहुत किहे अभ्यास।
जोरा चाहै ताग-दस
टूटहिं ताग पचास।

इसी प्रकार 'मसलानामा' में अन्य बहुत-सी लोकोक्तियाँ ऐसी हैं जिनमें जायसी का जीवन-दर्शन परिलक्षित होता है।

मलिक मुहम्मद जायसी की भाँति ही उनके परवर्ती कवियों ने भी लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। वास्तव में 'मसलानामा' से ऐसा प्रतीत होता है कि जायसी का युग लोकोक्तियों के व्यापक प्रयोग का युग था। जायसी के पूर्व, लोकोक्तियों का प्रयोग इतनी प्रचुरता से नहीं मिलता। बाद में तो हिन्दी कविता में लोकोक्तियों का प्रयोग इस बहुतायत से हुआ कि तुलसी, सूर, केशव, पद्माकर आदि ने तो अपने ग्रन्थों में यथास्थान इन्हें प्रयुक्त किया ही, प्रगति एवं प्रयोगवाद तक इनका व्यापक प्रयोग चला आता है। जायसी की परम्परा को आगे चल कर कुछ कवियों ने और अधिक पल्लवित-पुष्पित किया। यही नहीं, 'मसलानामा' के आधार पर लोकोक्तियों की पुस्तकें लिखी गईं। शिवदास कवि की 'लोकोक्ति-रस कौमुदी' तथा महात्मा पहलवानदास की 'उपखान विवेक-वाणी' आदि ऐसी ही पुस्तकें हैं।

जायसी के परवर्ती साहित्य में लोकोक्तियाँ

'घाघ-भड्डरी', बलई मिश्र आदि इनके उन्नायक एवं प्रवर्तक ही नहीं, प्रचारक भी थे।

लोकोक्ति-रस कौमुदी

'लोकोक्ति-रस कौमुदी' शिवदास कवि की नायिका-भेद पर आधारित लोकोक्तियों का सुन्दर संकलन है। इसमें लगभग तीन-सौ लोकोक्तियाँ संगृहीत हैं। इसका संकलन पं० सुधाकर द्विवेदी ने किया था और 'भारत-जीवन प्रेस' के स्वामी बाबू रामकृष्ण वर्मा ने इसे प्रकाशित कराया था। इस पुस्तक का प्रथम प्रकाशन उक्त प्रकाशक द्वारा १८९० ई० में भारत-जीवन प्रेस, काशी से हुआ था। 'मसलानामा' की ही भाँति इसमें भी दोहों-चौपाइयों में लोकोक्तियों का प्रयोग किया गया है। उदाहरणार्थ—

लोग कहावत बहु मन पागै,
चोरी को गुड़ मीठा लागै।

उपखान विवेक-वाणी

'उपखान विवेक-वाणी' महात्मा पहलवानदास जी की लोकोक्तियों का संग्रह है। इस पुस्तक में लोकोक्तियों का प्रयोग उपदेशात्मक ढंग से दोहों-चौपाइयों में किया गया है। महात्मा पहलवानदास जी का जन्म सं० १७७६ तथा मृत्यु सं० १९०० के लगभग हुई थी। यह १२४ वर्ष तक जीवित रहे। यह अपढ़, अथवा कम पढ़े लिखे कवि थे। स्वयं आँखों के कष्ट से लिख नहीं सकते थे। रचना करते जाते थे और शिष्य-गण लिखते जाते थे। 'उपखान विवेक-वाणी' में मंगलाचरण के पाँच दोहों को छोड़कर लोकोक्तियों से सम्बन्धित १८० चौपाइयाँ तथा २६ दोहे हैं। यह कृति अभी तक अप्रकाशित है।*

* 'उपखान विवेक-वाणी' का लेखक द्वारा सम्पादन हो चुका है और काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका के वर्ष ६५, अंक ३, सं० २०१७ में इसका पाठ प्रकाशित हो चुका है।

इसकी लोकोक्तियों के कुछ उदाहरण निम्नांकित हैं :—

कस माया के फंदे परा,
घोड गँवाय जीन सिर धरा।

× × ×

बहु बाजीगर सबहिं नचावै,
घोड कै पूँछ कलोर हिलावै।

× × ×

मूरति साजेसि, पाथर काटी,
का भूसा पर लावसि माटी।

तुलनात्मक विवेचन

सभी सन्तों एवं सन्त-कवियों की लोकोक्तियाँ एक-सी ही हैं किन्तु उनके प्रयोग में अन्तर है। जिस कवि अथवा सन्त की कविता का जो जीवन-दर्शन रहा है, उसी के अनुसार उसने लोकोक्तियों का प्रयोग भी किया है। जायसी ने लोकोक्तियों का प्रयोग सूफी-मत के अनुसार, संसार की असारता एवं अद्वैतवाद के आधार पर 'इश्क' को प्रतीक मानकर किया है। शिवदास कवि ने उनका प्रयोग नायिका-भेद को लेकर किया है तथा महात्मा पहलवानदास ने सन्त, उपदेशक के रूप में किया है। उदाहरण के लिये मैं उक्त तीनों कवियों के, एक ही लोकोक्ति के तीन-प्रयोग प्रस्तुत कर रहा हूँ—

जनम अकारथ खोइ कै, कहा करै जियसाल।
औसर चूकी डोविनी, गावै ताल-बे-ताल।
—जायसी

× × ×

बदि संकेत ढिग लाल के, गई न ब्याकुल बाल।
औसर चूकी डोमिनी, गावे ताल-बे-ताल।
—शिवदास

× × ×

नाम सुमिरु ते पार करु, कर्म-काल का जाल।
औसर चूकी डोमिनी, गावै ताल-बे-ताल ॥
—पहलवानदास

महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी ने 'मसलानामा' के रूप में लोकोक्तियों का संकलन करके, अब से साढ़े-चार सौ वर्ष पूर्व ही एक नयी परम्परा स्थापित कर दी थी। जन-भाषा में सीधे-

उपसंहार

सादे शब्दों द्वारा लोकोक्तियों में अपने मत का भाव-प्रकाशन जायसी की अपनी विशेषता ही नहीं, मौलिकता भी है। क्योंकि इसके पूर्व लोकोक्तियों का इतनी प्रचुरता से प्रयोग नहीं होता था। जायसी ने सर्व-प्रथम इन लोकोक्तियों का मूल्यांकन किया, उन्हें समाज में ढूँढ़-ढूँढ़कर संकलित किया और अपने जीवन-दर्शन के साँचे में ढालकर जन-जन तक पहुँचा दिया। इससे यह पता लगता है कि जायसी लोक-साहित्य के सच्चे पारखी थे। आज जिस लोक-साहित्य के माधुर्य से प्रभावित होकर उसका संकलन, सम्पादन एवं प्रकाशन हो रहा है, जायसी ने उसके महत्त्व को सैकड़ों वर्ष पूर्व ही समझ लिया था।

'मसलानामा' महाकवि जायसी की एक ऐसी अमूल्य कृति है जो जायसी को लोक-साहित्य का प्रथम संकलनकर्ता बनने का श्रेय प्रदान करती है। जायसी सूफी-सन्त के साथ-साथ सच्चे अर्थों में जन कवि थे। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि जब कभी 'लोक-साहित्य' का इतिहास लिखा जायगा तो जायसी को प्रथम लोक-साहित्य-संकलनकर्ता के रूप में स्मरण किया जायगा।

कहरानामा

सुनहु मीत हौं किरति बखानौं, महरा जस महराई रे।
कोऊ केवट होइ नाव चलावत, काऊ लागि कहराई रे॥
कोऊ गुन[१] धारि शीश पथ ठेले, चलेउ डोर गहि साँचे रे।
तीर-तीर उथले सो पंथा, गहिरे ते भल बाँचे रे॥
कोऊ निखारि[२] सूत अस कीन्हा, भा धीमर मन मान्यो रे।
काहू फाँदि[३] निरखि नहिं देख्यो, परा जाल अरुझान्यो रे॥
कोऊ गहि साँस समुद मँह बूड़ा, ढूँढ़ि सीप लइ आवा रे।
कोऊ टकटोरि[४] छूँछि होइ बहुरा[५], हाथ झारि पछताना रे॥
कोऊ अवगाह हारि गा पैंरत, रहा बीच होइ ठाढ़ा रे।
कोऊ धाइ परा गहिरे माँ, सो भल आहि जो काढ़ा[६] रे॥
कोऊ अथाह लै थाह पाउ सों, पैंरि तीर वहि लाग्यो रे।
कोऊ सत् छाँड़ि, बूड़ि, औगाहे, गा भरोस जिय खांग्यो[७] रे॥
कहै महंमद रहेहु सम्भारे, पाँउ-पानि मह घाले रे।
टोइ-टोइ भुंइ पाँउ उठायहु, नाहिं त परिहौ खाले रे॥
वार-बैठि[८] सो पंथ निहारैं, अहै पार जेहि जाना रे।
चढ़ा नाव सो पार उतरिगा, नाहि तौ मन पछिताना रे॥

---

[१] गुन=नाव की एक प्रकार की रस्सी जिसका उपयोग नाविक नदी के उल्टे-प्रवाह की ओर नाव खींचने में करते हैं। बहुधा वे उसे शीश में बाँधकर नौका खींचते हैं। "शीश पथ ठेले" का यही अर्थ है। [२] निखारि=साफ करके। [३] फाँदि=फंदा, गाँठ। [४] टकटोरि=टटोल कर। [५] बहुरा=लौटा। [६] काढ़ा=निकाला। [७] खांग्यो=सशंकित हुआ। [८] वार-पैठि=दिन डूबने तक।

ऊभि-बाँह[१] करि ठाढ़ पुकारै, केवट वेगि न आवसि रे।
कहैं लोग यह मुरुख अजाना, बिनु गथ[२] चढ़ै न पावसि रे॥
दूरि गवन संबल जेहि नाहीं, अति निधाह[३] भा डोलै रे।
जित चिल्लाइ सुनइ सबु कोई, केवट गरब न बोलइ रे॥
जेहि असि सूझि होइ मारग कै, गांठि पोढि करि आवैं रे।
माँगत दान दीन्ह जिन पहिले, तेहिं धरि बाँह चढ़ावैं रे।
और जौनि सठ पाँउ परि विनवैं, विनती किहे न मानै रे।
अनचिन्ह रहेव न किहेव चिन्हारी, अब कैसे पहिचानै रे॥
तात, बन्धु औ मीत सँघाती, सो न मिलै जेहि चाहै रे।
दरबि-हीन[४] मन झुरै[५] अकेला, को लै तेहि निरबाहै रे॥
कहैं महंमद पन्थ न भूलौ, आगे जस निस्तारा रे।
सो कइ चलहु पार जेहि उतरहु, नत बूड़हु मझधारा रे॥
चढेउ नाउ निरभय-जिउ[६] नाहीं, जब लगि पार न लागै रे।
मारै मच्छ[७] जाइ फिरि डोंगा, माँझधार होइ खाँगै रे॥
बहुत पाट[८] भइ भादौं नदिया, गरु-बोझ[९] जनि बोझहु रे।
पेलब[१०] कहाँ, कहाँ बहि लागी, यह अपने जिय सोझहु रे॥
उठै भँवर अरु लहरि हिलोरै, नाउ पात घत डोलब रे।
देखि पार जिउ षिन-षिन काँपिहि, कौन भरोसे बोलब रे॥
कछुहा[११], सूसि[१२], चहूँ दिशि उलथहिं, मगर, गोह, घरियारा रे।
कोइ मझधार डेरावनि लगिहैं, कैसे-क उतरब पारा रे॥

---

[१] ऊभि-बाँह=ऊँची भुजा उठाकर। [२] गथ=दाम। [३] निधाह=असहाय। [४] दरबिहीन=द्रव्य-हीन, धन रहित। [५] झुरै=झुराना, सूखना (वैसवारी बोली का शब्द)। [६] निरभय=निर्भय। [७] मच्छ=मछली, जल के जीव। [८] पाट=चौड़ाई, विस्तार। [९] गरु-बोझ=वजनी बोझा। [१०] पेलव कहाँ···लागी=नाव को कहाँ ढकेलूँगा और वह कहाँ बहकर जा लगेगी। [११] कछुहा=कछुवा। [१२] सूस=एक अन्य जलचर प्राणी जिसे सूस अथवा स्वीस कहते हैं, यह 'पुर' जैसी होती है।

करिया[1] पौढ़ि, करहुँजनि[2] डोलै, सबर डाँड लै लावै रे।
खेवनिहि केहेहु लाइ चित खेवै, गुन गहि तीर लगावै रे।।
ऊँच-करार[3] चढ़त दुख होइहि, धाइ नीर जनु खाइहि रे।
जबहि खेइ लै पार लगाइहि, तबहिं पेट जिय आइहि रे।।
कहैं मुहंमद धन्ध-सवाई, सुनहु मोरि सुधि अैसे रे।
छाँडहु मोह एक चित बाँधहु, पार उतारहि जैसे रे।।
धीमर[4] धाइ परहु जनि गहिरे, अैसे मच्छ न पावहु रे।
मगर-गोह तबहीं धरि खाइहि, काहे जीव गँवावहु रे।।
धीमर चालु धार मन कीन्हें, जस बग[5] पाँउ उठावै रे।
धरि मगूर[6] लीलै सौ काठे, पर कोइ चार न पावै रे।।
मेलि सिस्ट चारा चित बाँधहु, रहहु दृष्टि मन लाये रे।
जस दुख देखि रहब तेहिं औसर, अस सुख होइहि पाये रे।।
जो छुटकार वेगि नहिं लागै, हिये नेवारेहु कोहू रे।
गाढ़े-डोरि, ढीलि दै खीचेहु, तौ पैहहु 'बड़-रोहू'[7] रे।।
नाहि त खौंरि[8] लाइ कै बैठेहु, नदी बहै जस सोती रे।
घोंघी औ सेवार सब निसरैं, पैहहु सीप कि मोती रे।।
कहै महंमद, यह समुझावन, सुनि ले मुरुख अजाना रे।
जे नाहीं आपुहि डहकावा[9], सो नहिं भयो सयाना रे।।
जेहि असि साध होइ गहिरे कै, औ चाहै जिव राखा रे।
चढ़े सार-गति नावरि-खेवै[10], लीन्हें हाथ पचाखा[11] रे।।
गोड़िया[12] लोभ मरत मछरी के, अमर जाल धरि घाला रे।
बहुत पसार साँठ सुठि थोरा, परेव जीव कर लाला रे।।

---

[1] करिया = काला साँप। [2] करहुँजनि = महा-विषधर। [3] ऊँच करार = ऊँचे-खाले। [4] धीमर = मल्लाह, नाविक। [5] बग = बगुला। [6] मगूर = मगर। [7] बड़ रोहू = बड़ी रोहू। रोहू एक प्रकार की मछली है। [8] खौरि = कटिया। [9] डहकावा = डहकाना। [10] नावरि खेवै = नाव खेवे। [11] पचाखा = डाँड़। [12] गोड़िया = कहारों की एक उपजाति।

महरी भली खेल यह छाजै, जेई रे खेल अस खेला रे।
मच्छर वार पसारि पानि मँह, देखत चरित अकेला रे।।
लै कारी यक जाल पसारो, खंडहिं-खंडहिं ताने रे।
लावहिं फाँद, टूटि पुनि जोरहिं, निरु वारहिं अरुझाने रे।।
भँवर वार मेलहिं पानी मँह, तस धरि हाथ फिरावै रे।
चौफंद[1] रूप लाइ कै डंडा, सकति हाँकि लै आवै रे।।
जेतना मच्छ आइ कै पैठे, सो सब जीव फंदावै रे।
पहिना-प्रान[2] तहाँ जल तजि कै, नाहक जीव गंवावै रे।।
कहैं महंमद काल-अहेरी, उन्ह ते तोऊ न बाँचा रे।
जो लैं आवा, सो हरि लैगा, सुनहु बोल यह साँचा रे।।
जेइ रे टोइ[3] मछरी-बड़ि[4] पावा, सो तौ लाग छपावै[5] रे।
गरु-गम्भीर, बैठ होइ चौरा[6], हलुकन[7] ते घिसिआवै[8] रे।।
गरू-ताप[9] चाल्हरि भुंइ दाबी, कठिन सींग[10] औ मँगुरी[11] रे।
हाथ घालि ढूँढेहु सजुगाये, नाहीं त छेदी अँगुरी रे।।
पार-पार लाये चेल्हवारी[12], छोट बड़ा सब भेंटै रे।
खिलकै[13] देखि कोठवारी[14] चाल्हा, पुनि सब लाग समेटै रे।।

---

[1] चौफंद = चार फंदे वाला। [2] पहिना = पढ़िना, एक प्रकार की बड़ी मछली। [3] टोइ = टटोल कर। [4] मछरी बड़ि = बड़ी मछली। [5] छपावै = छिपाना। [6] चौरा = चबूतरा। [7] हलुकन = हल्का, किनारे पर टकराती हुई लहरों को हलका कहा जाता है। 'हलकोरना' शब्द इसी से बना है। [8] घिसियावै = घिसलाना। [9] गरु-ताप = मछली पकड़ने का एक सामान। यह सेठे से झबिया की तरह लम्बा बनाया जाता है तथा दोनों ओर खुला रहता है। [10] सींग = एक प्रकार की मछली जो अपने काँटे से घाव कर देती है। इसका विष बिच्छू की तरह चढ़ता है। [11] मंगुरी = एक प्रकार की मछली। [12] चेल्हवारी = किनारे पर का जमाव, एकत्रित भीड़। [13] खिनक = क्षण में। [14] कोठवारी-चाल्हा = हृष्ट-पुष्ट मछली।

पेलनि[१] होइ, पेलि चल आगे, तीर-तीर का टोवसि रे।
उथले रहिसु, परिस जनु गहिरे, नत हाथहु कै खोवसि रे॥
सगढि-सगढि[२] लैं तीर लगाइन्ह, लाग लोग सब बीनै रे।
जेइ पावा, तेइ तहँइ छपावा[३], वरिय[४] न पावा छीने रे॥
जे संजूत[५] अंग-मन करि राखा, भरेउ मच्छ तेइ डहरी[६] रे।
जेहि के गांज-ताप[७] कछु नाहीं, तीर धरहिं सो सहरी[८] रे॥
कहहिं महंमद होहु भंडारी, कर गहि कुँजी तारा रे।
जासों कुँजो, ताकी पूँजी, अरु जित अरथ-भंडारा[९] रे॥
डोंगा बैठि रैनि[१०]-दह[११] खोजै, द्योस[१२] कांट तेहि डारैं रे।
चहुँ, दिशि ढूंक[१३] लागि रहै महरा, जाते कोऊ न मारैं रे॥
अति औगाह[१४], थाह बिनु पाये, मीजत हाथ किनारे रे।
आगे मिलहिं, बाँधि अस धीरज, राखेहु लाइ जियारे[१५] रे॥
जो विचार बिनु, बूड़ सांस गहि, निससि[१६] वेग उतराना रे।
हाथ न लागि मच्छ कुछ तिन्हके, बार-बार पछिताना रे॥
चुभुकत[१७] नीर, वोनाइ कान दै, डारि तरेरी[१८] देखैं रे।
पावै मरम मांदि[१९] को जबहीं, तहँ दह मच्छ विसेखै रे॥

---

[१] पेलनि = प्रवेश करना, घुसना। 'पेल जाना' एक मुहावरा। [२] सगढि = समेट कर। [३] छपावा = छिपाया। [४] वरिय = बड़ी। [५] संजूत = संयत। [६] डहरी = एक वर्तन। [७] गाँज-ताप = मछली पकड़ने के उपादान। [८] सहरी = एक प्रकार की मछली। [९] अरथ-भंडारा = अर्थ का भंडार, खजाना, कोश। [१०] रैनि = रात। [११] दह = कुण्ड। [१२] द्योस = कवि। [१३] ढूंक = ताक, 'ताक लगाना' एक मुहावरा। [१४] औगाह = अवगाह। [१५] जियारे = जीवित। [१६] निससि = निकलकर। [१७] चुभकत = कुण्ड में जहां मछली होती है पानी में बुलबुले उठने लगते हैं। उसे 'चुभकना' कहते हैं। [१८] तरेरी = आँखें फाड़-फाड़ कर देखना। [१९] मांदि = मांद, वह खोह जहाँ मछलियाँ छिपी रहती हैं।

महरा, मछरी मरै न जानै, जेहि दिन गहिरे जाइहि रे।
मगर-गोह तबही धरि खाइहि, कोऊ मरम न पाइहि रे॥
निरभय होहु, सरम सब छाँड़हु, पैठहु पहिरि लँगोटा रे।
करि पगु-ध्यान-हाथ मन लावहु, पावहु पहिना[१] मोढा रे॥
कहैं महंमद, तहाँ न परिये, जहाँ न लहुर[२] -बड़ाई रे।
है कपरा[३] झाँखर अरुझाना, सकहु तौ चलौ छड़ाई रे॥
प्रेम राज जो करहु पिआई[४], साथी-पाँच[५] संभारेहु रे।
बरजत[६] रहेहु होइ जनि करकस[७], गरिहड[८]करि झिझकारेहु रे॥
मनुवहिं कहेहु रहै मनु मारे, खीझेहु-खीझ न बोलै रे।
मन ते मीत मिताई ना छोड़ै, कबौं गाँठि ना खोलै रे॥
भोरे, भोग-भुगुति जनि भूलेहु, जोग जुगुति तहँ साधेहु रे।
जो यहि भाँति करहु मतवारी, तौ मद सों चित बाँधेहु रे॥
नाहित है ठाकुर बड़-दारुन, सुनिकै चारु-कुचारी[९] रे।
मारिहि बाँधि, डाँडु[१०]पुनि लेइहि, निसरी सब मतवारी रे॥
जबहिं सँवरिया आइ तुलाइहि[११], साँटि[१२] पीठि पर टूटहि रे।
भाई-बन्धु गोहारि नहि लागहि, काहु के कहे न छूटहि रे॥
लै घिसियाय[१३] चलिहि राउर[१४] का, उतर देत मुह मारिहि रे।
कुरुवाँ[१५], लोग ठाढ़ सब देखिहहिं, कहै न कोऊ पारिहि रे॥

---

[१] पहिना = पढिना, एक बड़ी मछली। [२] लहुर बड़ाई = छोटाई बड़ाई, लहुरा = छोटा। [३] कपरा = कपड़ा, वस्त्र। [४] पिआई = प्यार। [५] साथी पाँच = पाँचों कर्म इन्द्रियाँ। [६] बरजता = वर्जित करना। [७] करकस = कर्कश, रूखा। [८] गरिहड = गरिहर, गाली देने वाला। [९] चारु-कुचारी = चाल-कुचाल। [१०] डाँडु = दण्ड, जुर्माना। [११] तुलाइहि = तुल जायगा, परिकर बद्ध हो जायगा। [१२] साँटि = सोंटा। [१३] घिसियाइ = घिसलाकर। [१४] राउर = आपको। [१५] कुरुवाँ = आस-पास के, "कुर्ब-गँवार"।

कहैं महंमद, सो मतवारा, जो पिय तेहिं मदमातैं रे।
ताकर पीव नीक मोहिं लागै, नत झूठी सब बातैं रे॥
पिंयब[1] जो सहज सबै कोऊ पीवत, मुसकिल अमल चढ़ाई रे।
बकै न बहुत, रहै चुप साधे, पावै अमल मिठाई रे॥
तब औरेन्ह[2] का लाग सिखावै, जुगुति[3] पिअै मद केरी रे।
रस-रस छाक लागि नहिं छूटै, यहै हाल बड़ि मेरी रे॥
रोवै खिनुक[4], हँसै खिनु[5], गावै, बकै, मौन खिनु होवै रे।
बैठे चलै, गिरै खिनु ठाढ़े, खिन जागै, खिनु सोवै रे॥
धनि भाठी[6], धनि मद, धनि सरवा[7], धनि दुकान, कलवारी रे।
धनि वह घरी, पिआई धनि-धनि, जहँ अस भइ मतवारी रे॥
ये मतवारेहु चीखि पिअहु मद, दुइ दुकान यहि नगरी रे।
एक कलारि[8] परम गुन आगरि, भरि राखिस दुइ गगरी रे॥
कोउ लै अमल खुमारहि माते, रहे मौन सुख भीजै रे।
कोऊ बकि-बकि भे विमत अभागी, झुरहि अमल तन छीजै रे॥
कहै महंमद मतै अगारी, राखि, लोक गरु आतम रे।
कोऊ सराब लै परे खराबी, गै दिसि दुवौ महातम रे॥
हुरुक[9], झाँझ[10] भल बाजत आवै, औ सब कहरा नाचै रे।
चढ़ि कै दुलह बिआहन आवैं, दुलहिन तेहि रंग राँचै रे॥
रहस-कोउ[11] महरी मिलि गावैं, औ सब कहहिं बिआहू रे।
नैहर छाँडि, चलब जब ससुरे, समुझि परैं सब काहू रे॥

---

[1] पियब = पीना, यहाँ पीना मदिरा के अर्थ में आया है। प्रेम की मदिरा। [2] औरेन्ह = दूसरों को। [3] जुगुति = युक्ति, तरकीब। [4] खिनुक = पलभर में, एक क्षण में। [5] खिन = क्षण में। [6] भाठी = भट्ठी, जिसमें शराब बनती है। [7] सरवा = सडायद। [8] कलारि = कलवारिन, जो शराब की दूकान पर बैठ कर मदिरा बेचती है। [9] हुरुक = एक प्रकार का बाजा। [10] झाँझ = एक प्रकार का बाजा। [11] रहस-कोउ = व्याह के अवसर पर गाये जाने वाले लोकगीत।

बात सुनहु, यक सखी सयानी, सति बोलौं तुम्ह आगे रे ।
सँवरि-सेज, पिय की मन डरपै, खुरुक-खुरुक[1] जिय लागै रे ।।
गीत नाच कुछ मनहि न भाव, हौं इति संका आइन्हि रे ।
कंत बांह धरि पूछिहि बतियाँ, काह कहब तेहि ठाइन्ह रे ।।
इहाँ जो खेल खेलि सो खेलहु, उहाँ खेलि कसि होई रे ।
सासु-ननद दोऊ देहैं उठौना[2], लाज रहब मुख गोई रे ।।
देवर-जेठ केरि सुठि संका, निसरि[3] होब नहिं ठाढ़ी रे ।
कुँअर-ससुर देखे कस बोलब, निसु-दिन घूँघुट काढ़ी रे ।।
कहैं महंमद सोई सुहागिनि, जो अंसे पिय-रावै[4] रे ।
नैहर[5] केरि होई गुनवन्ती, सो ससुरे सुख पावै रे ।।
सुनहु बात सब सखी-संघातिनि[6], ब्याह-चार सब काहू रे ।
यहि नैहर दिन-चारिक[7] रहना, ससुरे जनम निबाहू रे ।।
होतहिं दुइ-पतवा[8] तरु जामे, अैस[9] चरित विधि खेला रे ।
दुइ-दुइ लाइ जन्म सब जोरा, आपुहि रहा अकेला रे ।।
स्वर्ग लाइ धरती सो जोरा, चाँद-सुरिज दुइ कीन्हा रे ।
दिन औ राति भोर औ सांझा, सेत-स्याम[10] दुइ चीन्हा[11] रे ।।
फिरि इस्त्री-पुरिस भे दोऊ, ईश्वर गौरा साजे रे ।
उठत शब्द, सुनि परत स्रवन-दुइ, बाजन दुइ कर बाजे रे ।।
चली जो लिखनी होइ दुइ-फारा[12], भयो सुख-दुख जग लाहा रे ।
जो जस होत पंथ दुई परगट, कंत करत तब काहा रे ।।

---

[1]खुरुक-खुरुक = खटके में । [2]उठौना = ताने, व्यंग्य । [3]निसरि = निकलकर । [4]पियरावै = पीली हो, हल्दी से जिसका आँचल पीला किया जाय । [5]नैहर = पिता का घर, पीहर, मैका । [6]संघातिनि = साथ की खेलने वाली । [7]दिन चारिक = चार दिनों तक । [8]दुइ पतवा = दो पत्ते । [9]अैस = ऐसा । [10]सेत-स्याम = सफेद, काला । [11]चीन्हा = चिह्न । [12]दुइ फारा = लेखनी बीच से फटी रहती है ।

हिन्दू-तुरुक दोऊ हम देखहु, जो बालक सोइ ब्याहा रे।
बूझि विचारि लाउ जिय पिय सों, यहि जियने को लाहा रे॥
कहैं महंमद जुग दुई सोऊ, अहै लोक दुइ जानेहु रे।
दाहिन-बाँउ[1] बूझि दुइ बेवरा[2], आपु-आपु पहिचानेहु रे॥
सुनहु अयानी[3] होहु सयानी, करु गिआन[4] बुधि लीन्हें रे।
मिली पनिहारी[5], पुरुष निहारी, पानि भरेहु चित दीन्हे रे॥
होइ संग-साथे, घैलन[6] माथे, रहेहु सजग होइ नागरि रे।
मारग आवत, बाँह डोलावत, चित ते टरै न गागरि रे॥
हित नागरि सों, चित गागरि सों, यहि बिधि सुधि नहि डोलै रे।
जो सुधि छूटै, गागरि फूटै, पानि जाइ पिय बोलै रे॥
गुपुत[7] रहहु अस, लखै न कोऊ, कस रैनिचोरि,[8] दिन साहू रे।
करनी करु, घट होई[9] परगट, भेद न दीजै काहू रे॥
मनमथि[10] जिव ते, लै मति पिव ते, कहेहु न काहू पूछे रे।
भरी जो ढारै[11], सकति उतारै, भरै बहुत दुख छूछे रे॥
यहै चेतावनि, सुनु मन भावनि, बूझहु मनहि बिचारी रे।
हिरदय राखहु, सब रस चाखहु, होहु सोहागिनि नारी रे॥
नगर जैस वा पिय क अैस वा, रहै महंमद ढाढे रे।
छार कीन्ह तन, घूर कीन्ह मन, दिन-दिन लागेउ बाढे रे॥
पिय बड़ देवक[12], जेहि सब सेवक, अरु देवन्ह को देवा रे।
तो पै[13] पाइहि, जो मन लाइहि, निसि-दिनु राखिहि सेवा रे॥

---

[1] दाहिन-बाँउ = दाहिना-बायाँ। [2]बेवरा = व्योरा, विवरण। [3]आयानी = मूर्ख। [4]गिआन = ज्ञान। [5]पनिहारी = पानी भरने वाली। [6]घैलन = घड़ा। [7]गुपुत = गुप्त। [8]रैनि ··साहू = 'रात में चोर, दिन में साह' एक लोकोक्ति है। [9]परगट = प्रकट। [10]मनमथि = अपनी आत्मा का मंथन कर। [11]ढारै = लुढ़कावै। [12]देवक = देने वाला। [13]तो··· = वही पाता है।

जित जग आहे, तित सुख चाहे, निबहै[1] वोहिके[2] निबाहे रे।
पिय रस पागहु, भारि[3] निसि जागहु, तौ होई मन चाहे रे॥
कोउ प्रगटै, करि आस अनेकन, अपने मन के राजा रे।
जो वहि आयसु, राज-रजायसु, तेहिं सिंगार सब छाजा रे॥
नियर[4] होहु जस, डरत रहेहु तस, चौगुन दारुन देखी रे।
हरुब[5] न मानेहु, नित नौ जानेहु, तिन्हकर झार विसेखी रे॥
सब सिंगार बनि, गरब किहेहु जनि, अधिक नयेहु[6] पिय आगे रे।
भारि सोहागिनि, करिहि दोहागिनि, अतनु कै दूखन लागे रे॥
दीन्ह अहै बुधि, करहु बेगि सुधि, पुनि कहना कछु नाहीं रे।
जो पिय आइहि, को समुझाइहि, लइ जो चलै गहि बांही रे॥
कहैं महंमद, पूजे दिन हद, सुनि लेहु बचन हमारा रे।
पग पग तियरे, अरु डरु जियरे, बेगिहि करब सिंगारा रे॥
साजहु माँग, झारि कै पाटी, चित्र-विचित्र सँवारेहु रे।
बेनीं गूंदि[7], भुअंग[8] लजावहु, रचि-रचि सेंदुर सारेहु रे॥
अंजन तैस देहु दोऊ नैनन्ह, खंजन उपमा पूजै रे।
केहरि-लंक बनी छुद्रावलि, गूजरि सोभा गूँजै रे॥
भौंहन बीच सारंग बनावहु, दुहु कर कंगन-कलाई रे।
कानन्ह दोऊ, कुंडल पहिरावहु, दामिनि ज्यों चमकाई रे॥
बेसर[9] नाक दिपै मनिआरी[10], चहुँ दिसि मुकुता-तारा रे।
कोकिल कंठ, सपूरन अभरन[11], सोहत हिरदय हारा रे॥

---

[1] निवहै = निर्वाह हो। [2] वोहिके = उसके। [3] भरिनिसि = सम्पूर्ण रात्रि। [4] नियर = निकट, नजदीक। [5] हरुब = डर, भय। [6] नयेहु = झुकना। [7] गूँदि = गूँथना। [8] भुअंग = भुजङ्ग, काला साँप। [9] बेसर = नाक में पहनने वाला आभूषण। [10] मनिआरी = मणियों वाली। [11] अभरन = आभरण।

दोऊ कुच बीच लसैं हारावलि, 'चंप-कुसुम' को माला रे।
पायजेब[१] सोहै चौरासी[२], पायल पाँय बिसाला रे॥
निहि-कलंक, सिर तिलक सँवारहु, उड़गनु ज्यों उजियारा रे।
काया माँजि, साजि कै दरपन, देखहु सब संसारा रे॥
कहैं महंमद, दोऊ-जग तरिये, लीन्हे पिय कै आयसु रे।
जेहि-जेहि मारग, बरजै साजन, तेहिं मारग जनि जायसु रे॥
साजौ-साजौ होय चहूँ दिसि, चलि बरात नियराइहि[३] रे।
सुनि-सुनि पिय के गह-गह बाजन, धसकि-धसकि जिउ जाइहि रे॥
खिन-खिन अँसुआ ढुरि-ढुरि आइहि, जब लगि मंदिर को आई रे।
बिछुरत बंधु, बाप महतारी, समुझि न रहहिं रोवाई रे॥
आइ बराती, भीतर पैठे, अब मिलि लेहु सहेली रे।
तुम ठाढ़ी सब कौतुक देखहु, हम धरि जाब अकेली[४] रे॥
जेहि संगति पल-घरी न बिछुरिनि, पिय देखे सोऊ भागी रे।
आपु-आपु का सब कोऊ रोई, गोहने[५] कोऊ न लागी रे॥
जासों जीतेहु ते फिरि हारी, करिहि जो ओहि[६] मनु भाइहि रे।
पिय कर खेल, मरन धनियाँ[७] का, बूते[८] कछु न बिसाइहि[९] रे॥
जेहि सायर[१०] महँ रहै मुहंमद, मनु बाते नित जूझै रे।
मारे मरै न मान मनोहर, बाउर कहे न बूझै रे॥
अनुचित हते[११] जानि नहिं पायउँ, आइ गये लेनिहारा[१२] रे।
ठावहिं ठाँव रहा सब ऐसे, सुनि कै पिय के कहारा रे॥

---

[१]पायजेब = पैरों में पहना जानेवाला चाँदी का आभूषण। [२]चौरासी = नूपुर, घुँघरुओं को वैसवारी बोली में चौरासी कहा जाता है। [३]नियराइहि = निकट आई। [४]हम…अकेली रे = मैं अकेली ही पकड़ जाऊँगी। [५]गोहने = गोहार। [६]ओहि = उसके। [७]धनियाँ = स्त्री, नारी। [८]बूते = शक्ति, अपने बूते, वैसवारी शब्द। [९]बूते…बिसाइहि रे = अपनी शक्ति से कुछ नहीं होगा। [१०]सायर = 'सीर-सायर', खेत, बाग, तालाब आदि। [११]हते = था (व्रज शब्द)। [१२]लेनिहार = लेने वाले।

भाई बंद, परिवार मीत, हित, समुझि नीर भरि आवै रे।
नैहर छाँडि, पराई जानी, चला लोग पहुँचावै रे।।
बहुत दिनन्ह पर अस परहेलेउ[१], कत[२] आवन[३] यहि गाँऊँ रे।
खबर न मिलिहि, मिलन कस कहिये, अस वह अस्थिर ठाऊँ रे।।
डँडिया[४] फाँदि बेगि बैठारिन्हि, चलहु-चलहु सब भाखै रे।
लै चढ़ाइ पिय चले सिंघासन, केहि जुगुता[५] को राखै रे।।
करवट फेरि लेइ नहिं पावा, सांकर भयो खटोला[६] रे।
बोलि न सकब, सजन संग गोहने[७], घूँघुट जाइ न खोला रे।।
नीच[८] बाँस, सिर उठै न पावै, मारग नाहिं जो थोरा रे।
जाना दूरि, उतहिली[९] खुइलहूँ, खिन खिन सहब झकोरा रे।।
कहैं महंमद सो दिन संवरहु, घर चित सों न बिसारेहु रे।
सोई किहेहु, कहै पिय जोई, जेहि आपुहि निस्तारेहु रे।।
कहत जाइ आगे भा कहरा, जस आगू[१०] बहि सूझै[११] रे।
बाट न चलै, उबट[१२] होइ खांगे, जो पीछिलि होइ बूझै रे।।
बरिया[१३], आडि कंथ बनि जायहु, होइ पार जेहि बेरा रे।
बन-अरुझावन, देखि भयावन, दहिनेहु-बाउँ अभेरा[१४] रे।।
खिन दहिने, बायें खिन कसि-कसि, मंझा दल कंवराये रे।
है अँधियारी, मानिक आगे, सो लायहु पथ बायें रे।।

---

[१] परहेलेउ = भेज दिया। [२] कत = कैसे। [३] आवन = आना। [४] डँडिया = डोली का बांस। [५] जुगुता = युक्ति, तरकीब। [६] खटोला = डोली का खटोला जो बहुत छोटा होता है। [७] संग गोहने = साथ होंगे। [८] नीच बांस = डोली का बाँस नीचा होता है। प्रायः शीश से टकराया करता है। [९] उतहिली ...झकोरा रे = ऊँची-नीची भूमि के झकोरे। [१०] आगू = आगे। [११] सूझै = दिखाई पड़े। [१२] उबट = रास्ता छोड़कर। [१३] बरिया = एक प्रकार की लाठी, बल्ली, जिसे डोली में टेक दिया जाता है। [१४] अभेरा = अभिरना, ठोकरें।

ऊपर घाम, तरे कै भूभुरि[१], छाँह न कतहूँ पायहु रे।
जो अस जान, पंथ कै बेवरा[२], कस न छतुरिया[३]छायहु रे॥
धूम-बरन[४], धूँधुर[५] अस देखी, सोई सजन कै गाऊँ रे।
तहँ गये बहुतै सुख होई, जो निबहब[६] यहि ठाऊँ रे॥
सघन छिउलिया[७], अमल ढखुलिया[८], भरा बहुत दुख भारी रे।
नरि[९] सांकरि, नांघत दुख होइहि, समुझहु मुरुख अनारी रे॥
कहैं महंमद, भार न लीजै, अहै कठिन गरुआई रे।
बाट चलत, जिउ दूभर होई, समुझि लेहु अस जाई रे॥
अगम न थाह, नदी अति बाढ़ी, निबहि[१०] न सकत कहारा रे।
मैं जल बिन मुकाम[११]की बटिया, परग-परग[१२] बटमारा रे॥
खेले-भूलि, चित चेत न कीन्हेउ, जब नैहर लरिकाई रे।
वारि-वयस[१३]गुन कुछौ न सीखेव, का दहुँ करिहैं साईं रे॥
जो समुझायो, सो नहि आयो, झूठि खेल मंह भूलिउ रे।
अब हिय हूलि, कंत सुधि आये, कसक हिंडोले झूलिउ रे॥
खिनन उतारसि, औ उलझारसि, अरे राड बड कहरा रे।
जब लगि पिव का देखिन जिउका, सहसा दारुन महरा रे॥
पहुँचत नियरे, भा डर हियरे, अनचिन्ह[१४] ससुर औ सांईं रे।
महरी गावत, हुरुक[१५] बजावत, आरति करैं सब आईं रे॥

---

[१] भूभुरि = भुलभुल, तपती हुई धरती। [२] बेवरा = विवरण। [३] छतुरिया = छाता, छतरी। [४] धूम बरन = धुयें के आकार वाला। [५] धूँधुर = धुँधला, अस्पष्ट। [६] निबहव = पार होंगे, निकलेंगे। [७] छिवलिया = छोटे-छोटे पलाश के पेड़। [८] ढखुलिया = ढाक की झाड़ें। [९] नरि = नाली। [१०] निबहि = पार होना। [११] मुकाम की बटिया = प्रस्थापित मूर्ति। [१२] परग-परग = पग-पग पर। [१३] वारि वयस = कच्ची उम्र। [१४] अनचिन्ह = अपरिचित। [१५] हुरुक = हुलसित होकर।

खिन-खिन कांपौं, औ मुख झांपौं, तहाँ न आपन कोई रे।
आइ हमारी, पूजी बारी, जो कुछ लिखा सो होई रे॥
कंत पियार, रूप गुन आगर, हम धानि निगुन अनारी रे।
जब हँसि भेंटब, सब दुख मेटब, तबही कुसल हमारी रे॥
कहैं महंमद, मतहु पीउ मद, कहन-सुनन कछु नाहीं रे।
गरब जो लाडिहि[१], सो सब छाँडिहि, पुनि पाछे पछिताहीं रे॥
सासुर सीवां[२], भा दुख जीवा[३], कोऊ न कहै असाखी[४] रे।
आहि रीति जसि, करहि लागि तसि, डांडी-द्वारे[५] राखी रे॥
उहाँ एक मंडफ[६] घर भीतर, सकति आनि वहि केरी रे।
पूजन-पाती, देवस-न-राती, सब मानहिं चहुँ फेरी रे॥
जीति बेवाही, दुलहिन चाही, सब पहिले वहि पासा रे।
संग-न-सहेली, रहब अकेली, तौ पूजिहि मन आसा रे॥
लै तहँ डगरी[७], है यक बोबरी[८], जहाँ न पंथ, न वारा रे।
डासन[९] सथरी, ओढ़न कथरी, जब लगि भयो भिनसारा रे॥
पुनि हम आउब, आन जगाउब, लै जावै घर-वारा[१०] रे।
कहँ हम रवनी[११], रात डरवनी[१२], दै गे वज्र केंवारा रे॥
का संजूत[१३] कै, चलिहु भेंट लइ, जेहि पिउ जाइ न खोरी रे।
का गुन कीन्हेउ, केहि चित दीन्हेउ, हतिउ जो बारी भोरी रे॥
कहैं महंमद, संवरहु ओही, जो वहि मार बहु साँचै रे।
मुवसि[१४] न जौ लहिं, मरा न तौ लहिं, मारि जिये सो नाचै रे॥❀

---

[१] लाडिहि = लोवगा। [२] सीवां = सीमा। [३] जीवा = बढ़ गया। [४] असाखी = बिना साक्षी के। [५] डांडी-द्वारे = द्वार की सीमा। [६] मंडफ = मंडप। [७] डगरी = ले चली। [८] बोबरी = अँधेरी कोठरी। [९] डासन = बिछौना। [१०] घरवारा = घरवाला, स्वामी, पति। [११] रवनी = रुकी, निवास किया। [१२] डरवनी = डरावनी, भयानक। [१३] संजूत = सहेज कर। [१४] मुवसि = मरना।

❀ अंतिम दो पंक्तियाँ 'महरी बाइसी' से ली गई हैं।

आये जन दोइ, देखत हौं जोइ, आइ रहे मोरे द्वारे रे।
धरि हथियावन,[१] आवहि मारन, पूछन पिय के सिवारे रे।।
कंत तुम्हार केर का नाऊँ, बसै मोर जिव काहे रे।
का गुन गहतो[२], गहि जग दहतो[३], अपने नैहर माहे रे।।
कंत कवन जो कह रितवन सों, को पूरुख को नारी रे।
को तोर अगुआ, को पछुलगवा, को सयान को वारी रे।।
कौने प्रेमा, कुसल-छेमा, आयहु दोऊ कर जोरे रे।
कया[४] जगत मां, मया[५] लगत मां, आस-प्रीति कस तोरे रे।।
को कासों[६] संग, मरन महाजन, चरौ-अचर सब काहू रे।
जो मोहिं परसै,[७] सो सुख विलसै, कहिहौं जनम निबाहू रे।।
पूछत हौं तोहिं, उतरु देसि मोहिं, मोछ-भुक्ति का देऊँ रे।
नत यह खोवना,[८] तोर खेलउना, मारि, मारि जिउ लेऊँ रे।।
कहैं महंमद, सोई मूलमद[९], सोई औषधि, सोई पीरा रे।
ताहि संभारहु, आपुहि तारहु, गुन गहि लावहु तीरा रे।।
अस डर खावा, बकुर[१०] न आवा, गुरु संवरा तेहि ठाऊँ रे।
सो संवरत खन, उठेउ नाद मन, जीभ खुली पिय नाऊँ रे।।
पिय मोर महरा, बहु-गुन कहरा, जो मोहिं दीन्ह गोसाईं रे।
एकइ कीन्हेउ, और न चीन्हेउ, दुहुँ कस दूसर साईं रे।।
पीठि पुरुब दै, मुँह रे पच्छिउँ, उत्तर-दखिन द्वौ सोयहु रे।
यहिबिधि नित्ते,[११] रहेहु निहिचिन्तें[१२], सदा यहै दुख रोयहु रे।।
अगुवा खेवक[१३], जेहि सब सेवक, सूधे[१४] मारग आवा रे।
गुन जो पढ़ावा, नाव चढ़ावा, तीर घाट तेइ पावा रे।।

---

[१]हथियावना = हथियाना, हाथ लगाना। [२]गहतो = ग्रहण करना। [३]दहतो = दहना, जलना। [४]कया = काया। [५]मया = दया। [६]कासों = किससे। [७]परसे = स्पर्श करे। [८]खोवना = खोना। [९]मूलमद = मूलमंत्र। [१०]बकुर = बोल न फूटना। [११]नित्ते = नित्य। [१२]निहचिंते = निश्चिन्त। [१३]खेवक = खेनेवाला। [१४]सूधे = सीधे।

अस रङ्ग-राती, जहँवा[१] जाती, सुनहु साँच यह बोलै रे।
डंड सांकरी, बैठि चाकरी, कैसेहु नाव न डोलै रे॥
मैं पिय पूजा, चहौं न दूजा, साँची करौं दोहाई रे।
और जो मधु अस, होइ अधिक रस, सो तो मोहि न सोहाई रे॥
कहैं महंमद, तजहु द्वैतवद[२], जो एकुहि चित बाँधा रे।
सौति[३] जो दोसरि,[४] पाउ न वोसरि, अस रहु पिय के राँधा रे॥
भा भिनुसहरा,[५] जुरि सब महरा, होतहि पाछिल पहरा[६] रे।
सखी बोलावहु, चौक पुरावहु, बोलहिं, नाचहिं कहरा रे॥
हुरुसन,[७] सुरुखन,[८] झाँझ-मंजीरा, महरी बंसुरी बाजै रे।
सब्द सुहावन, अनहद गावन, महरी बनि-बनि साजैं रे॥
पूजा-पानी, दुलहिन आनी, दुलहा भा असवारा रे।
बाजन बाजे, कहरा साजे, जैस चारु संसारा रे॥
सेंदुर लै-लै, महरी दै-दै, रँगराती सब डोलैं रे।
भा सब भेसू, जानहु केसू, बचन कोकिला बोलैं रे॥
मंगल चारा, झाँझ नकारा, औ संग सजा सहेली रे।
जनु फुलवारी, फूली बारी, चली करत रस केली रे॥
जाइ तुलाने[९], सो घर जाने, जहँ दुइ दुलहिन बारी रे।
झुरमुट तस भा, मंडफ भरि भा, देखन सूरति प्यारी रे॥
कहैं मुहंमद, जेहि दिन आनंद, सो दिन आगे आवा रे।
अहै एक नग, मुँदरी सब जग, दुहुँ सोहाग को पावा रे॥

---

[१]जहँवा=जहाँ। [२]द्वैतवद=द्वैतवाद। [३]सौति=सौत। [४]दोसरि=दूसरी। [५]भिनुसहरा=प्रभात। [६]पाछिल पहरा=पिछला प्रहर, पछिलहरा। [७]हुरुसन=एक प्रकार का बाजा। [८]सुरुखन=एक प्रकार का बाजा। [९]तुलाने=तुल गये।

भुइयाँ,[१] ठइयाँ,[२] जगत-गोसइयाँ, पूजा-पूजि मनाई रे।
आखत[३] आवा, माथ चढ़ावा, मंडफ ते लै आई रे॥
चौक पुराइन, गाँठि-जोराइन, चौमुख दीपक बारी रे।
दै-दै भाँवरि, खेलत साँवरि, प्रेम-प्रीति उजियारी रे॥
जुवा[४] संचारा, दोऊ संवारा, सोरह-सोरह पारी रे।
जनम पुनीता, भा संग मीता, पुरुख जीति, धन हारी रे॥
चुनि-चुनि कलियाँ, सब रस अलियाँ, सेज-साज धन राखी रे।
सेवा करै, रहै कर जोरे, प्रीतम फल-रस चाखी रे॥
डरत रहै जो, बहुत लहै सो, आपुहि कुछ नहिं जानें रे॥
तौ सुख पावै, औ पियरावै, सदा भोग रस मानै रे।
जो महरी अस, महरी सौ-दस, रहैं धरे तेहि आसा रे॥
कान्ह चेहेउ जब, तजि गोपी सब, गे कुबिजा[५] के पासा रे॥
कहै महंमद, नरद होय रद, खसम[६] दृष्टि जब फेरी रे।
अधिक लीन होइ, रहै दीन होइ, आनि निवाजै चेरी रे॥
कूच-मुकाम[७] जाइ फिरि आवन, विधिनै पंथ चलायो रे।
दुख-सुख दोऊ, छूट ना कोऊ, जग अस जनम गवाँयो रे॥
लीन्ह बसेर, ठाँउ तस पावा, फूल भयो जस घामे[८] रे।
बाधक[९] भेख, दीन्ह तेहि जुगुता[१०], चहुँ दिसि कंटवा[११] जामे रे॥
बेधा भंवर-वास रस बल से, ऐसे ज्ञान विचारहु रे।
तरुवर भयो निगंधी[१२] पीयव, ववरि सु फलहिं संभारेहु रे॥
जेहि सेवक आपन करि जानै, तेहि वदि भीखम गावै रे।
कोविद-कविहि करत दरिद्री, मूरुख राज रजावै रे॥

[१]भुइयाँ=धरती। [२]ठइयाँ=ठौर, स्थान। [३]आखत=अक्षत। [४]जुवा=जुआँ का खेल। [५]कुबिजा=कुब्जा। [६]खसम=पति। [७]कूच=प्रस्थान। [८]घामे=घाम, धूप। [९] बाधक=बाधा डालने वाला। [१०]जुगुता=युक्ति। [११] कंटवा=काँटे। [१२]निगंधी=गंधहीन।

चंदन जहाँ नागि, तहाँ राखिसि, जहाँ फूल, तहाँ काँटा रे।
मधु जहवाँ, तहवाँ तक माखी, गुर जहवाँ, तहँ चाँटा रे॥
गिरि-सुमेरु, तिरुसूल कीन्ह धरि, समुद खार भा पानी रे।
चंद्र घटा औ कीन्ह कलंकी, लंका रावन वानी रे॥
कहै महंमद जेहि रे कीन्ह बड़, तेहि-क-गर्ब विधि तूरा[१] रे।
निहि कलंक सो आपु गोसाईं, बारह-बानी पूरा रे॥
कहेउ महंमद 'कहरानामा', है याते[२] जग स्वारथ रे।
पढ़ै-सुनै, समुझै, समुझावै, होइ सुफल परमारथ रे॥
वेद-पुरान, भागवत-गीता, तंत्र-मंत्र सब जानेहु रे।
यामे[३] सार इस्क-पथ[४] जानेहु, अउर[५] कहावत मानेहु रे॥
हम विचारि इस्कै मन लावा, पावा जो मन भावा रे।
जो ढिग[६] आवै, सो मत पावै, कहि-सुनि यहै सिखावा रे॥
जप-तप, बरत,[७] पाट[८] औ तीरथ, संध्या करि सब छाँड़ा रे।
भयो न फल कछु आँखिन देखा, तब इस्कै मन गाड़ा[९] रे॥

[इति श्री कहरानामा मलिक मुहंमद-कृत समाप्त]

---

[१]तूरा = तोड़ा। [२]याते = इससे। [३]यामे = इसमें। [४]इस्क-पथ = प्रेम का पंथ। [५]अउर = और, अन्य। [६]ढिग = निकट। [७]बरत = व्रत। [८]पाट = पूजा-पाठ। [९]गाड़ा = लगाया।

मसलानामा

(अथ लिख्यते मसलानामा मलिक मुहंमद-कृत)

(१)

यह मन अलह मियाँ ते लाई,
जेहिका खाई, तेहिका गाई।

(२)

बात बहुत जो कहै बनाई,
छूछ पछोरै, उड़ि-उड़ि जाई।

(३)

जीवन थोर बहुत उपहास,
अंधरी - ठकुरी, पीठ - वतास।

(४)

तोर अन्याउ होहि का क्रोधी,
बैल न कूदा, गोनिय कूदी।

(५)

पुन्य-पाप ते कोऊ न तरा,
भूखी - डाइनि, मासू - मरा।

(६)

अब साईं सो नेह करु, फेरि न यह संजोग।
कोल्हू ते खरि ऊतरी, रही बैल के जोग॥

(७)

निहचै तोर रूप मैं हेरा,
आवै - आव कि जाइय बेरा।

(८)

बिनु साईं नहिं और सुहाई,
घर-घिव होय सो रूखा-खाई।

(९)

सकहु तौ कुछ नेकी ले साथ,
खावा - भात, उडावा - पात।

(१०)

आपु देख, औरेन्ह सों सीख,
देसि चोरि, परदेसी - भीख।

(११)

करि ले आजु अहै जो करना,
धंध-छाँडि, आखिर है मरना।

(१२)

रूप निरञ्जन छाडि कै, माया देखि लोभाइ।
कुत्ता चौक चढ़ाइये, चाकी चाटन जाइ॥

(१३)

जासों प्रेम सो धंधे परै,
राज-छाँड़ि, घुरबिनियाँ करै।

(१४)

पढ़े बहुत पै नेह न जाना,
सौ - गुलाम, सूना - खरिहाना।

(१५)

बिना प्रेम जो जीव निबाहा,
सूने गाँउ मा पावै काहा।

(१६)

प्रीतम-प्रेम कोई कहै आना,
धान-क-खेत, पयारहिं जाना।

(१७)

पाँच-भूत कोइ सुमति न करैं,
सहजे - राज जरा, वैखरै।

(१८)

बुधि-विद्या के कटक मों, है "मैं" का विस्तार।
जेहि घर सासु-तरुनियाँ, बहुवा कौन सिंगार॥

(१९)

अंतह समुझु, करसि का बेठि,
काल्हि पैं बनियाँ, आजुइ सेठि।

(२०)

करनी करहु, रहहु जनि वैंसि,
जिसकी लाठी, तिसकी भैंसि।

(२१)

पुन्नि-पाप यक रूप न जानि,
दूध-क-दूध, पानि-का-पानि।

(२२)

माँग लेहु चाहहु जो माँगा,
राजन-घर, मोतिन कै खाँगा।

(२३)

बिन सुदृष्टि पाई नहिं बाट,
अंधरेन कै लूटा है हाट।

(२४)

धंध जगत को छाँड़ि कै, राम नाम होइ लूटि ।
भला भवा गुर माखिन खावा, मैं भिनकनि ते छूटि ।।

(२५)

प्रेम-डगर का आपु ते जाई,
भूले बाँभन गाई खाई ।

(२६)

लाज-धरम वह राखै जाकुर,
पाँचै - मीत, पचासै - ठाकुर ।

(२७)

पाथर काटि कै दैवत साजा,
अंधरेन का जस कनवैं राजा ।

(२८)

करै पाप औ पोथी सोचै,
नाक कटाइ पटोरे पोंछै ।

(२९)

जो न होत असवरिया पीऊ,
सूधी अँगुरी न निकसत घीऊ ।

(३०)

खाहु, खवावहु, देहु कछु, नेक न करहु विचार ।
आगि लगे ते झोपरा, जो निकसै सो सार ।।

(३१)

डरति रहहु मनही-मन-माहीं,
संगी ते कछु चोरी नाहीं ।

(३२)

ग्रौर करे जो ग्रौर बतावै,
धाही ग्रागे पेट छपावै ।

(३३)

तेहि रोवै जो वोहि सो हाई,
सो गुड़ नाहीं जो माखी खाई ।

(३४)

कहे जाहु जो कुछु मन माहीं,
जीभ के ग्रागे बंधक नाहीं ।

(३५)

जोवन गरब न भूलसि, नेह, नांह को राख ।
दिना-चार की चाँदनी, फिरि ग्रंधियारा पाख ॥

(३६)

जो कुछु गाँठि होइ तौ लेई,
माँगे बनियाँ गुर नहिं देई ।

(३७)

काम परे नहिं ग्रावै बुद्धि,
तीरथ गये मुड़ाये सिद्धि ।

(३८)

मिलि चलि जब लगि हंसियहि गाँऊ,
निकसा सहना मर्द क नाऊँ ।

(३६)

साजु-संवारु जोई कुछु बनै,
दूबरे - क - ताना कोऊ न सुनै ।

(४०)

बिना दरस जो पूजै भीत,
ग्राँधर मोल ना फूट मसीत ।

(४१)

बहुरि न बनिहै कहत कछु, जब लागिहि सिर चोट।
अब यह सब यक ठौर है, दूध-कटोरा वोट॥

(४२)

जो अब अस निधरक हहु सोई,
आये धार सो बबुरी बोई।

(४३)

धंध-पोथ जाइ नहिं साथ,
बगुला मारे पखना हाथ।

(४४)

जनि भूलहु काहू के पुन्य,
जाको चुन्य, ताही को धुन्य।

(४५)

समुझि चलौ तुम ऐसी राह,
घर के भेदिहा लंका डाह।

(४६)

नेक-नेक का पूछसि अरे,
कुवाँ परे कहुँ पाथर सरे।

(४७)

देवस गवायो बाढ़ि सब, साँझ चले उठि बाट।
जैसे कुत्ता धोबि को, भयो न घर को घाट॥

(४८)

टोइ-टोइ भुँइ राखहु पाँऊ,
चींटी का मूतै पैराऊँ।

(४९)

सत्त-धर्म, जनि छाडहु भाई,
नाहक चोट जोलाहा खाई।

(५०)

प्रेम-नेम ते माथ नवाई,
संभल बसै, अलोना खाई।

(५१)

उत्तर कहा देव जो सूझा,
खेत गये खेतवाही बूझा।

(५२)

सारा प्रेम-ज्ञान नहिं वाहा,
गाँव डिगंबर पावै काहा।

(५३)

जो बोलै सो मारे, बात बनावै सोइ।
सहना छपा पयार तर, को कहि वैरी होइ॥

(५४)

जो हम कंत पियारा पाई,
तौ हम मुसरन ढोल बजाई।

(५५)

जो नहिं आजु सजन घर आवै,
बिनु-गुन, फाग देवारी गावै।

(५६)

दुख-सुख में जो पिय संग हंसै,
थोरा खाइ बनारस बसै।

(५७)

जो जेहि राता सोई सुहात,
भूखा बंगाली भातै-भात।

(५८)

ग्यांन धरो मन चित सों गाढ़,
छूटा बरध बुसैले ठाढ़।

(५९)

चित्त धरो रहिमान सों, छाड़ि देहु चौग्राब।
फेरि न होब लरिकवा, फेरि न खेलन जाब॥

(६०)

ग्रौगुन बिना दोस दै साजन,
नाच न जाही टेढ़े ग्राँगन।

(६१)

निकटहिं गाँव सजन केवार,
गोंड़े ठाढ़े भिजै गंवार।

(६२)

तिस्ना लोभ मेटि ना मरै,
बूढ़े फल के भरोसे तरै।

(६३)

पूजी थोर बहुत मन धाऊ,
गये पूत जिन्ह जोवन लाऊ।

(६४)

ग्रापु माँह ग्रौरेन सों पेख,
कंगन हाथ, ग्रारसी देख।

(६५)

जनम ग्रकारथ खोइ कैं, कहा करे जिय-साल।
ग्रौसर चूकी डोविनी, गावे ताल - बेताल॥

(६६)

जेहि तन प्रेम-नींद तेहि साजा,
सूने गाँउ, अंधरेन का राजा।

(६७)

दूर नहीं यह देखु विचारी,
रांधे मुहें परोसे धारी।

(६८)

कीन्हे क्रोध न आवै हाथे,
छूँछा घाउ, निहाई के माथे।

(६९)

जो कोई नेम-धर्म ते साधे,
आधे माघे कामरि कांधे।

(७०)

सेत-केस भे, जोबन गा,
नाचे गाँउ मा सिरकी का।

(७१)

होनहार सो होइ है, बहुत किहे अभ्यास।
जोरा चाहै ताग-दस, टूटहिं ताग-पचास॥

[इति श्री मसलानामा मलिक मुहंमद-कृत समाप्त]

परिशिष्ट

परिशिष्ट—१

कहरानामा

'कहरानामा' में प्रथम तथा द्वितीय पांडुलिपियों में जो पाठान्तर एवं शब्दों का अन्तर आया है, उसकी सूची निम्नांकित है :—

पंक्ति	प्र० पांडुलिपि	द्वि० पांडुलिपि
१-२	चलावत	चलावै
२-२	नाही तौ	नाही त
२-१४	भूलौ	भूलै
३-१	भर्म जिउ नाही	निर्भय जिउ नाहीं
३-८	रोइ	होइ
३-१४	उतारहि	उतारहु
४-१	समझ	मच्छ
४-११	जब जगु	जब लगु
४-१४	सप्राना रे	सयाना रे
५-५	महेरी	महरै
५-७	पसारो	पसारै
६-१	रे हुइ	जेइ रे
६-१४	अह	अरु
७-५	उतराना	उतरानो
७-६	पछिताना	पछितानो
७-१२	पहिना	पन्हिना
८-१	पिआई	पिआरी
८-४	कवौ	कमौ
१०-४	परै	पारिहि

पंक्ति	प्र० पांडुलिपि	द्वि० पांडुलिपि
१०-६	वरु कुछु रुक	खुरुक-खुरुक
११-४	जनम	जगत
११-१०	नस	ना
११-११	हम	धर
१२-१	अप्रानी	अजानी
१२-१	सप्रानी	सयानी
१२-१०	भरी	भरि
१४-१३	तारिए	तरिए
१५-५	पैठे	बैठे
१६-१	अनुचित	अनचिन
१६-५	असवर हेलेउ	अस परहेलेउ
१७-२	वाहन चलै	बाट न चलै
१७-१२	पुरुख	मुरुख
१६-६	आउन	आउब
२०-१०	चाकरी	चौकरी
२५-४	और	औरि
२५-८	मन	चित

— —

परिशिष्ट—२

मसलानामा

पांडुलिपि प्रथम एवं द्वितीय के आधार पर 'मसलानामा' में जो पाठान्तर एवं शब्दान्तर आया है, उसकी सूची निम्नांकित है :—

पंक्ति	प्र० पांडुलिपि	द्वि० पांडुलिपि
१-३	उपहास	उपहासा
१-३	अंधरी·ठकुरी	अंधरी कुकुरी
१-३	बतास	बतासा
१-४	होहि	होसि
२-४	देसि	देस
२-४	परदेसी	परदेसहि
३-३	म	मा
३-६	विस्वा	विद्या
५-६	झोपडा	झोंपरा
६-५	बंधक	खंधक
६-६	को	सो
७-४	जोई	जेई
८-४	राह	राहा
८-४	डाह	डाहा
९-१	मतै	मूतै
१०-१	मुसरन	मुसरन्ह
१०-४	सुहात	सुहाता
१०-४	भात	भाता
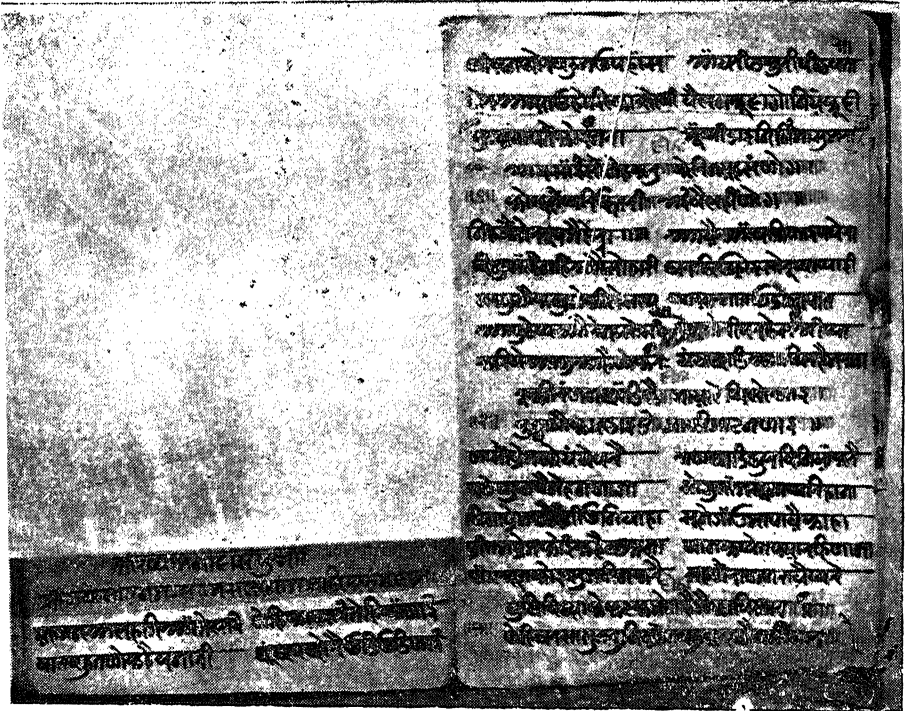
मलिक महंमद कृत 'मसलानामा' की पाण्डुलिपि श्री मनदास द्वारा लिखित
पृष्ठ प्रथम तथा द्वितीय

मसलानामा के अन्तिम पृष्ठ की प्रतिलिपि